अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-17, 16-30 अप्रैल, 2018

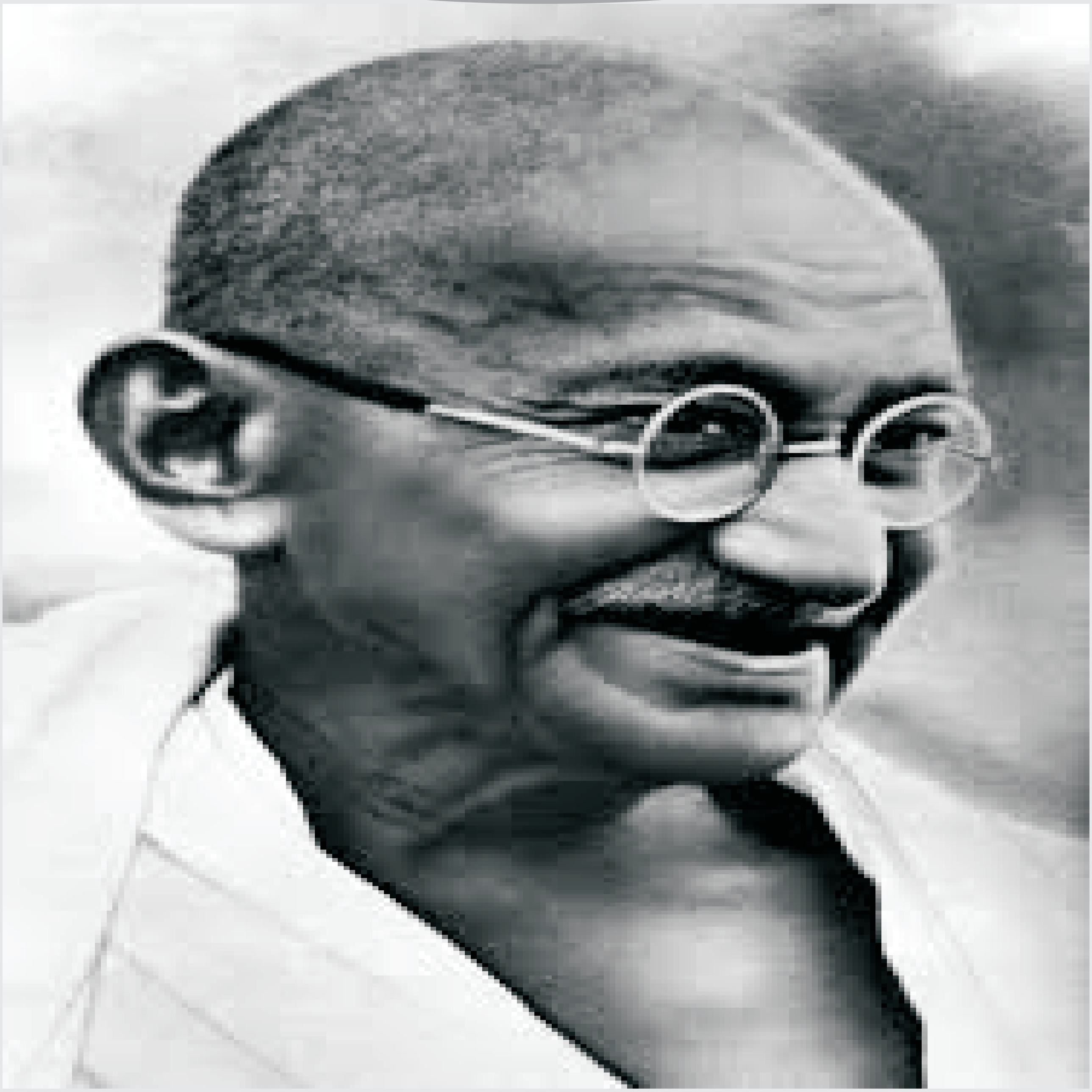

''स्वराज के लिए आवश्यक है निर्भयता'' -गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 17, 16-30 अप्रैल, 2018

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

संपादक
अशोक मोती
फोन : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. 'दलितों का भारत-बंद दलित उत्पीड़न... 2
2. स्वराज के लिए आवश्यक है... 3
3. जिसे तोड़ा, उसे फिर जोड़ो... 5
4. कट्टरता का विरोध जरूरी... 8
5. क्या सरकार शांतिपूर्ण आंदोलन को... 9
6. अहिंसक जन-आंदोलन भूदान... 10
7. गांधी की विरासत कहां तक होगी... 12
8. राष्ट्रकवि दिनकर की साहित्य-साधना... 14
9. उपन्यास - 'बा'... 16
10. गतिविधियां एवं समाचार... 19
11. कविताएं... 20

संपादकीय

दलितों का भारत-बंद दलित उत्पीड़न का प्रतिकार

विगत 2 अप्रैल को दलितों द्वारा आयोजित भारत बंद के संबंध में जो सूचनाएं प्राप्त हुई हैं, वे इस बात को पुष्ट करती हैं कि दलितों का यह भारत बंद दलित उत्पीड़न का प्रतिकार है और यह पहल एक लंबे समय बाद राजनीतिक दलों और दलित नेताओं की मंशा के विपरीत सफल भी हुई है। यानी यह स्वतःस्फूर्त बंद अप्रत्याशित रूप से सफल रहा, जिसने सरकार, सत्ता, राजनीतिक दलों, राजनीतिक और मीडिया विश्लेषकों की बोलती ही बंद कर दी। दलितों की यह पहल किसी के मार्गदर्शन की मोहताज नहीं रही। निःसंदेह दलितों की पीड़ा इस बंद से मुखरित हुई, जिसका आंतरिक स्वर है—''अब और बर्दाश्त नहीं कर सकते।''

यह कहना सर्वथा उचित है कि दलितों का भारत बंद उनपर हो रहे उत्पीड़न का प्रतिकार और उसकी पीड़ा की पुकार है। अब इस चेतना को बांधकर रखना बहुत आसान नहीं होगा।

पिछले दिनों दलित उत्पीड़न की जो घटनाएं पूरे देश में हुई हैं, दिल दहला देने वाली हैं। शर्म से सर झुका देती है। वर्ष 2015 और 2016 के नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़े दलित उत्पीड़न की इस स्थिति को भयावह बताते हैं। खासकर भारतीय जनता पार्टी शासित राज्यों में दलित के खिलाफ अपराध में काफी वृद्धि हुई है। 2015 में दलित महिलाओं के साथ बलात्कार के कुल 2326 तथा दलित महिलाओं के अपहरण के 687 मामले सामने आये हैं। आंकड़े यह भी बताते हैं कि आदिवासी और शहरी दलित भी पिछले चार वर्षों से दलित विरोध हिंसा के निशाने पर हैं। सरकार और मीडिया किसी ने भी ऐसी उत्पीड़नों को बहुत महत्त्व नहीं दिया, जो यह स्पष्ट करने के लिए काफी है कि समाज का बुनायादी ढांचा अभी तक सामंतवादी बना हुआ है और दलित की समस्या मूलतः ज्यों की त्यों बनी हुई है। शोषण, छुआछूत, तिरस्कार सब वैसे ही बने हुए हैं। वे धनवान के शोषण और बलवान के दमन के शिकार हैं। रविदास जयंती मनाते दलितों पर दमोह (मध्य प्रदेश) में प्रहार, हरियाणा के पंचायत चुनाव में वोट न देने पर पिटाई, आगरा में एक ब्राह्मण के हाथ छुए जाने से पिटाई, कन्नौज में दलित महिला से बलात्कार और फिर एसिड स्नान, गुजरात के ऊना में दलितों पर प्रहार के साथ कोरे गांव में फैलायी हिंसा और त्रिपुरा की जीत के बाद बाबा साहब अम्बेडकर की मूर्ति को तोड़ा जाना शामिल है। दलित को जूता पहनने और घोड़े पर सवार होने पर जान गंवानी पड़ी है।

हालांकि गांधी, विनोबा, जेपी और हमारे महान नेताओं ने दलित की पीड़ा और उसकी असमानता दूर करने के काफी प्रयास किये, किन्तु आज भी दलितों के प्रति समाज, सरकार और राजनीतिक दलों के व्यवहार में बहुत फर्क नहीं पड़ा है। दलित और आदिवासियों के प्रति समाज के रुख में कोई उदारता नहीं आयी है। राजनीतिक दलों और सभी सरकारों के लिए दलित उनकी बंदूक का बारूद बना हुआ है या अपनी सफलताएं गिनाने की कसौटी।

आजादी के पहले और बाद में भी जब तक गांधी जीवित थे, उनकी प्रेरणा से हरिजन सेवा बड़े पैमाने पर संगठित हुई थी। आजादी के बाद भारतीय संविधान में छुआछूत को दंडनीय अपराध घोषित किया गया, विधानसभा/लोकसभा में स्थान सुरक्षित हुए, नौकरियों में आरक्षण हुआ, फिर भी उससे दलित समाज में बहुत क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। इसकी जड़ में राजनैतिक दलों द्वारा राजनीति में अस्मिता और प्रत्यक्ष सहभागिता वाली लोकतांत्रिक व्यवस्था को नकारना रहा है। चाहे वह दलित हो या सामान्य वर्ग का नागरिक सबों को राजनीतिक दलों ने गांधी के सपने से इतर नये सपने दिखाकर छलने का काम किया है, ताकि उनकी आंखों में धूल झोंककर न्यूनसेंस वैल्यू से 'लोकमत' हासिल कर सत्तासीन हो सके। ऐसी परिस्थिति में आजादी के 70 वर्ष बाद दलितों के मन में डर समाना स्वाभाविक है कि जो वर्ग उनपर अब भी अत्याचार कर रहे हैं, वे उनके साथ छल न कर लें, उन्हें अपनी पुरानी व्यवस्थाओं में न ढकेल दें, उनके संवैधानिक अधिकार भी न छीन लें। ऐसी आशंकाओं को बल देते हैं कुछ राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक नेताओं के गैर-जिम्मेदाराना व असंवैधानिक बयान, जिसमें हिन्दू राष्ट्र बनाने, आरक्षण समाप्त करने तथा संविधान को बदलने जैसे वक्तव्य शामिल हैं।

राजनैतिक दल गांधी को बापू और राष्ट्रपिता तो मानते हैं किन्तु सत्य, अहिंसा, क्षमा, सर्वधर्म समभाव तथा विकेन्द्रित अहिंसक समाज की रचना के क्रांतिकारी विचारों को राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक योजनाओं में हाशिये पर ही रखते हैं।

हमें खुशी है कि स्वतंत्र भारत में दलितों ने एक सशक्त पहल की है, जिसे आगे उन्हें किसी भी राजनैतिक प्रलोभन से बचाकर अपने समाज को मुख्य धारा से जोड़ने के प्रयास में लगाये रखना होगा। पीड़ितों-वंचितों-तिरस्कृतों और इन उपेक्षितों को अपने अस्तित्व और आत्मसम्मान का भान हो चुका है। समाज की व्यवस्था और सरकार की योजनाओं में उचित स्थान पाने के लिए संगठित होने और प्रहार हो तो शक्ति संचय कर उसके प्रतिकार की एक स्थिति भी बना ली है। बस इन्हें केवल यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिहिंसा से हिंसा का प्रतिकार नहीं होता। इसलिए सदा अहिंसक प्रतिकार को ही प्रयोग में लायें।

–अशोक मोती

स्वराज के लिए आवश्यक है निर्भयता

❑ गांधी

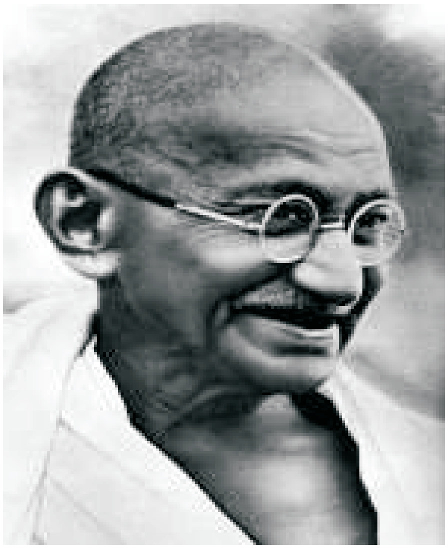

जिन लड़कों का अभी आपसे परिचय करवाया गया, वे मेरे मित्र और साथी कार्यकर्ता, स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया के पौत्र हैं। वे मेरे लिए सगे भाई के समान थे। इन लड़कों को देखकर मुझे सहज ही उनकी याद हो आयी है और मैं समझता हूं कि उनके बारे में मुझे आपको कुछ बताना चाहिए। सत्याग्रह के दिनों में दक्षिण अफ्रीका में जो हिन्दू और मुसलमान रहते थे, उनमें से एक भी भारतीय ऐसा नहीं था जो बहादुरी और ईमानदारी के मामले में काछलिया की बराबरी कर सके। उन्होंने अपने देश के सम्मान और प्रतिष्ठा की खातिर अपना सब-कुछ बलिदान कर दिया। उन्होंने न अपने व्यापार की चिन्ता की और न अपनी सम्पदा की और न मित्रों की ही, और तन-मन से वे संघर्ष में कूद पड़े। उन दिनों भी हिन्दू-मुस्लिम तकरारें जब-तब होती थीं, लेकिन काछलिया ने दोनों को तुला पर समान रूप से रखा। किसी ने उन पर अपने सम्प्रदाय के साथ पक्षपात करने का आरोप कभी नहीं लगाया।

और उन्होंने देशभक्ति और सहिष्णुता का यह महान गुण किसी स्कूल में या इंग्लैंड में नहीं, बल्कि अपने ही घर में सीखा था, क्योंकि वे गुजराती भी कठिनाई से लिख पाते थे। वकीलों के तर्कों का वे जिस प्रकार उत्तर देते थे उसे देखकर वे आश्चर्य करते थे, और उनकी सामान्य विवेक-बुद्धि अकसर वकीलों के लिए बड़ी काम की होती थी। उन्होंने ही सत्याग्रहियों का नेतृत्व किया, और काम करते हुए ही शरीर-त्याग किया। उनमें अली नामक एक बेटा था, जिसे उन्होंने मेरी देख-रेख में सौंप दिया था। ग्यारह वर्षीय यह बालक अद्‌भुत संयत और निष्ठावान मुसलमान था। रमजान के पवित्र महीने में वह एक दिन का भी रोजा नहीं छोड़ता था और फिर भी, उसके मन में हिन्दू लड़कों के लिए कोई दुर्भाव नहीं था। आज तो दोनों समुदायों के लोगों की तथाकथित धार्मिक निष्ठावादिता अन्य धर्मों के प्रति यदि घृणा नहीं तो कम से कम दुर्भाव का पर्याय बन गयी है। अली के मन में ऐसा कोई दुर्भाव नहीं था, कोई घृणा नहीं थी। मेरे लिए पिता और पुत्र, दोनों आदर्श व्यक्ति हैं, और ईश्वर करे कि आप उनके उदाहरण से अनुप्रेरित हों।

उन दिनों में, जब हिन्दू और मुसलमान एक प्रतीत होते थे, तथा एक-दूसरे के लिए और अपने देश के लिए, अपना खून बहाने को तैयार थे। मैंने छात्रों से सरकारी स्कूल और कॉलेज छोड़ने की अपील की थी। इतने वर्षों के बाद भी उन लड़कों से, उन शिक्षण-संस्थाओं से, निकल आने के लिए कहने का मुझे कोई दुःख नहीं है, और मेरा दृढ़ मत है कि जिन लड़कों ने मेरी अपील के जवाब में स्कूल-कॉलेज छोड़े, उन्होंने अपनी मातृभूमि की सेवा की, और मुझे विश्वास है कि भारत के भावी इतिहासकार उनके त्याग का सराहनापूर्वक उल्लेख करेंगे।

लेकिन दुःख की बात है कि आज ऐसे मुसलमान हैं **जो मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ते हैं, और ऐसे हिन्दू हैं जो मंदिरों में जाते हैं और पूजा करते हैं, और फिर भी ये दोनों एक-दूसरे के प्रति घृणा से भरे हुए हैं। वे सोचने लगे हैं कि मस्जिद या मंदिर में जाने के मतलब हैं कि हमें एक-दूसरे से घृणा करनी चाहिए। लेकिन अली, बहुत ही धर्मात्मा व्यक्ति होते हुए भी, ऐसा कभी नहीं सोचता था। मैंने यह कहानी आपको सिर्फ इसलिए सुनायी है कि मैं चाहता हूं कि आपमें से प्रत्येक व्यक्ति महान काछलिया और उनके प्यारे पुत्र अली की तरह सच्चा देशभक्त बने। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह आपको उन दोनों के जैसा नेक दिल दे।**

हकीमजी ने आपको उस स्मरणीय दिवस (11 अक्टूबर, 1920) की याद दिलायी है, जब हिन्दुओं और मुसलमानों ने अपने मतभेदों को भुला दिया था और हमेशा के लिए एक हो गये थे, जब सारे भारत में छात्रों को आमंत्रित किया गया था कि वे सरकारी या सरकारी सहायता-प्राप्त शिक्षण-संस्थाओं को छोड़कर निकल आयें। मैं जानता हूं कि यह निमंत्रण देने में मेरा बहुत साथ था, लेकिन मैं साहस के साथ कहता हूं

कि सात साल बाद भी, मुझे उसका कोई दुःख नहीं है और न मैं सोचता हूं कि वैसा करके मैंने कोई बड़ी भूल की थी। मेरा विश्वास है कि जिन्होंने सरकारी स्कूलों में छोड़ दी थी, उन्होंने देश की बड़ी सेवा की थी। मुझे निश्चय है कि जब भारत के उस काल का इतिहास लिखा जायेगा, तो निःसंदेह इतिहासकार को, लिखना पड़ेगा कि जिन लोगों ने सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार किया था, उन्होंने अपना और अपने देश का बहुत भला किया था।

मुझे उन शानदार दिनों के कुछ चिह्न यहां देखकर खुशी हो रही है, और मुझे बहुत हर्ष है कि आप झंडे को ऊंचा रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। आपकी संख्या थोड़ी है, लेकिन संसार में अच्छे और सच्चे व्यक्तियों की संख्या बहुत ज्यादा कभी नहीं रही है। मैं आपसे कहता हूं कि आप संख्या थोड़ी होने की चिन्ता न करें, बल्कि याद रखें कि आप कितने ही थोड़े हों, लेकिन देश की स्वतंत्रता आप पर निर्भर है। स्वतंत्रता का आपके किताबी ज्ञान प्राप्त करने या यंत्रवत तकली चलाने मात्र से भी कोई वास्ता नहीं है। अगर आपमें वे सब चीजें नहीं हैं, जो भारत की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक हैं तो मैं नहीं जानता कि और किसमें हैं। वे चीजें हैं—ईश्वर का भय मानना और किसी भी मनुष्य से या साम्राज्य कहलाने वाले बहुत से मनुष्यों के संगठन से न डरना। यदि इन दो चीजों की शिक्षा इस संस्था में नहीं प्राप्त की जा सकती तो मैं नहीं जानता कि और कहां की जा सकती है। लेकिन मैं आपके प्रोफेसरों को जानता हूं, मैं हकीम साहब को जानता हूं, और मुझे विश्वास है कि यहां ये दो बुनियादी चीजें बहुत सावधानी के साथ सिखायी जा रही है।

आपकी संस्था की, असंतोषजनक आर्थिक स्थिति की, मैं परवाह नहीं करता। तथ्य तो यह है कि मुझे खुशी है कि हम कठिनाई के साथ गुजारा कर रहे हैं, क्योंकि तब हम अपने रचयिता को और सच्चे मन से याद करेंगे और उससे डरेंगे।

यदि विश्वविद्यालय अच्छा काम कर रहा है तो आपको दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि ईश्वर आपको धन दे देगा।

हकीमजी की यह बात बिलकुल ठीक है कि मेरे लिए दिल्ली आना मुश्किल था। लेकिन आपके पास आना मेरे लिए बड़ी सांत्वना और राहत देने वाली चीज थी। मैं आपको खुश करने के लिए नहीं, खुद अपने को खुशी देने के लिए, यहां आया हूं। मैं यहां एक स्वार्थपूर्ण उद्देश्य से आया हूं, और वह है आपको यह बताना कि आपके मिलिया के बाहर जो घृणा और जहर का बवंडर चल रहा है, हिन्दू और मुसलमान जो एक-दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं, उन सबके बावजूद, आप लड़के लोग यहां अपने दिमाग ठंडे रखेंगे, अपने रचयिता से विमुख न होंगे, अपने दिलों में घृणा को कोई स्थान न देंगे, तथा अपने देश और विदेश के धर्मों को विनाश की राह पर जाते देखकर, मन में भी खुश न होंगे। यही एक आशा है जो मुझे आपके पास खींच लायी है।

आपने ध्यान दिया होगा कि मैंने खादी या तकली के बारे में कुछ नहीं कहा है। उसकी वजह यह है कि जिन दो बुनियादी गुणों के बारे में, मैंने आपसे बात की है, उनके सामने खादी और तकली भी कुछ नहीं हैं। आप तकली चला सकते हैं और खादी पहन सकते हैं, लेकिन मैंने आपसे जो चीजें करने को कहा है, यदि आप उन्हें नहीं करते तो आपकी खादी और तकली व्यर्थ होंगी। लेकिन मुझे विश्वास है कि हकीम साहब ने आपसे खादी पहनने की आवश्यकता के बारे में जो कुछ बताया है, उसे आप भूलेंगे नहीं। आप यह बात ध्यान में रखेंगे कि खादी के जरिये ही हम आज सैकड़ों बुनकरों, धोबियों, बढ़इयों आदि के अलावा 50 हजार कतैयों को रोजी दे रहे हैं। यह मत भूलिये कि इनमें बहुत-से मुसलमान हैं। चरखे के बिना कई जगहों पर मुसलमान औरतें भूखों मर रही होतीं। खादी पहनने के सिवा कोई दूसरा तरीका नहीं है, जिसके जरिये आप गरीब हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर सकें।

देश में, अपने दौरों में, मैं हजारों छात्रों से मिलता हूं। मैं देखता हूं कि वे भद्दी और गंदी आदतों में फंसे हुए हैं। उनकी चर्चा करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि आप सभी उन्हें जानते हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह आपको उन गंदे कामों से बचाये। जब मनुष्य अपने हाथ, आंखों और अपने दिमाग को गंदा कर लेता है तो वह मनुष्य नहीं रह जाता, बल्कि पशु बन जाता है।

हाथ, दिमाग या आंखों से कोई बुरा काम करने से आपको हमेशा बचना चाहिए। यदि हम सच्चे वीर पुरुष बनना चाहते हैं तो हमें सभी स्त्रियों को, उनकी आयु के हिसाब से, अपनी मां, बहन या बेटी मानना चाहिए। किसी स्त्री पर बुरी नजर न डालिए। हमें स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिए, मरने को तैयार रहना चाहिए। मैं जानता हूं कि लोग आजकल इस कर्तव्य को भूलते जाते हैं। मैं ईश्वर से एक बार फिर प्रार्थना करता हूं कि वह आपको इस बुराई से बचाये।

और सबसे बड़ी बात यह है कि आप अपने-आपको शुद्ध और स्वच्छ रखें, प्राणों की कीमत पर भी, अपने वचन को निभाना सीखें, और मैंने जो दृष्टान्त आपके सामने दिये हैं, उनकी याद अपने दिलों में हमेशा ताजा रखें।

मैं छात्रों को चंदे की थैली के लिए धन्यवाद देता हूं और मेरी कामना है कि यह विश्वविद्यालय दीर्घजीवी हो और भारत की आजादी का केन्द्र बने।

(जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली में, 2 नवंबर 1927 को दिया गया भाषण) ❑

जिसे तोड़ा, उसे फिर जोड़ो

❑ प्यारेलाल

''मैं यह समझने में आपकी मदद करने आया हूं कि आप किस हद तक पागल बन गये थे।'' कहा था गांधीजी ने सन् 1947 की 12 मार्च को बिहार के गांव कुमारहर में। वे नोआखाली के बाद आये थे। दूसरे दिन ही सिपारा गांव में उनकी मोटर रोक कर लोगों ने उन्हें पश्चाताप भरा एक पत्र दिया। अपने पाप के प्रायश्चित के रूप में शिकार बने मुसलमानों के कष्ट निवारण के लिए एक थैली भी भेंट की। आज फिर यही दुहराने का प्रयास है–पागलपन, क्रूरता भी और फिर घृणित राजनीति की आग बुझ जाने पर गांव का सद्भाव भी। हम अपने इस पागलपन को कब समझेंगे? –संपा.

बारह मार्च, 1947 को गांधीजी गांवों के लोगों तक अपनी आवाज सीधी पहुंचाने के लिए बिहार के भीतरी क्षेत्रों में जाने के लिए रवाना हुए। उन्हीं के शब्दों में कहें तो वे जो कुछ हुआ था, उसका रहस्य गांवों के लोगों के चेहरों से पढ़ लेना चाहते थे।

पहला गांव, जहां गांधीजी गये, कुमारहर था। वह पटना जंक्शन से 3 मील दूर था। जब लंबी फहराती सफेद दाढ़ी वाला एक बूढ़ा उन्हें खंडहर में ले गया और उसके घर तथा उसके रिश्तेदारों के घरों को जो नुकसान पहुंचा था, वह उसने दिखाया, तो गांधीजी का हृदय रो पड़ा। पुस्तकालय और मस्जिद को भी नहीं छोड़ा था। पूजा के स्थानों को भ्रष्ट करने की बात से गांधीजी को हमेशा गहरी पीड़ा होती थी।

शाम के प्रार्थना-प्रवचन में उन्होंने कहा, आप यह दलील नहीं दे सकते कि मुसलमानों ने हिन्दू मंदिरों को भ्रष्ट किया है। क्या इससे मंदिर की रक्षा करने अथवा हिन्दू धर्म की सेवा करने में किसी भी तरह मदद मिली है? मैं स्वयं तो जितना मूर्तिपूजक हूं उतना ही मूर्तिभंजक भी हूं। और आप मानें या न मानें, यह बात आप हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों पर उतनी ही लागू होती है। मानव जाति को प्रतीक की लालसा हमेशा रहती है। क्या वास्तव में मस्जिद और गिरजे वैसे ही नहीं हैं जैसे मंदिर हैं? ईश्वर का निवास तो सब जगह है। परंतु मनुष्य कुछ विशेष स्थानों और वस्तुओं को दूसरों की अपेक्षा अधिक पवित्र मानता है। यह भावना आदर के योग्य है, यदि इससे दूसरों की वैसी ही स्वतंत्रता में कोई बाधा न पड़ती हो। मैं स्वयं तो किसी मूर्ति को छाती से लगाकर उसकी रक्षा करने में अपने प्राण दे दूंगा, परंतु अपनी पूजा की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबंध सहन नहीं करूंगा। मैं यह समझने में आपकी मदद करने आया हूं कि आप किस हद तक पागल बन गये थे।...

दूसरे दिन गांधीजी पारसा का विनष्ट गांव देखने गये। रास्ते में सिपारा गांधी में ग्रामवासियों ने उनकी मोटर रोक कर एक थैली उन्हें भेंट की। उसे खोलने पर गांधीजी को सिक्कों के साथ सिपारा के ग्रामवासियों का हस्ताक्षर किया हुआ पश्चात्ताप का पत्र भी मिला :

कृपया हमारे घोर पाप के लिए हमें क्षमा करें। हमारे हाथों हमारे मुसलमान भाईयों के जान-माल की जो हानि हुई है, उसके लिए हम बड़े लज्जित हैं। अपने पाप के पश्चात्ताप और प्रायश्चित के रूप में हम उपद्रवों के शिकार बने मुसलमानों के कष्ट-निवारण के लिए यह थैली आपको भेंट करते हैं। हम आपसे फिर क्षमा मांगते हैं और यह विश्वास दिलाते हैं कि भविष्य में ऐसी बात फिर कभी नहीं होगी।

उस दिन शाम को अब्दुल्ला चक के अपने प्रार्थना-प्रवचन में गांधीजी ने कहा, मैं चाहता हूं कि प्रत्येक भारतवासी यह समझे कि भारत में कहीं भी किये गये बुरे कार्य में उसका भी भाग है—फिर वह किसी ने भी किया हो और किसी के भी विरुद्ध किया गया हो—और उसे सुधारने की जिम्मेदारी सबकी है।

खुसरूपुर में गांधीजी ने कहा, देश के सामने दो ही मार्ग हैं। एक, वार के बदले में वार करने का है; और दूसरा, विशुद्ध अहिंसा का। 1917 का चंपारन सत्याग्रह अहिंसा की शिक्षा का मार्ग था। परंतु हाल की बिहार की घटनाओं ने मुझे इस निर्णय पर पहुंचने के लिए मजबूर कर दिया है कि आपकी अहिंसा दुर्बलों की अहिंसा है। जो संकट हमारे सामने खड़ा है, उसमें ऐसी अहिंसा काम नहीं आयेगी। उसमें केवल बलवानों की अहिंसा ही कारगर सिद्ध हो सकती है। यदि बलवानों की अहिंसा का मार्ग आपके हृदय और आपकी बुद्धि को जंचता हो, तो उसकी ओर पहले कदम के तौर पर आपको सामने आकर सच्चे पश्चात्ताप के चिन्ह-स्वरूप मुसलमान भाइयों को पहुंचाये गये नुकसान की क्षतिपूर्ति करनी चाहिए। इसके विपरीत, यदि आप ईमानदारी से ऐसी अहिंसा में विश्वास न रखते हों और यह सोचते हों कि समय की चुनौती का उचित उत्तर हिंसा का मार्ग ही है, तो आपको साफ शब्दों में और सचाई के साथ ऐसा कह देना चाहिए। ''मुझे सचाई से चोट नहीं पहुंचेगी, परंतु अहिंसा के उपाय की असफलता को देखने के लिए मैं जीवित रहना पसंद नहीं करूंगा। मेरी दृष्टि में इस बात का बड़ा महत्त्व नहीं है कि अपने प्रिय सपने की सिद्धि के लिए मैं अपने प्राणों की आहुति कहां देता हूं। मेरे लिए तो भारत में सभी स्थान बराबर हैं। बिहार जो उदाहरण प्रस्तुत करेगा, उसी पर हमारे देश का भविष्य निर्भर करेगा।''

15 मार्च को फुलवारी शरीफ की मुस्लिम लीग कष्ट-निवारण समिति के कुछ सदस्य गांधीजी की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने निराश्रितों की तरफ से कई प्रश्न गांधीजी से पूछे। गांधीजी के उत्तरों से यह प्रकट हुआ कि जिन कई प्रश्नों पर पहले उन्होंने अपनी राय देने में संकोच किया था, उनके विषय में गांवों को देखने के बाद वे निश्चित निर्णय पर पहुंच गये थे।

उनसे पूछा गया : ''आज की अस्थिर परिस्थिति में क्या आप मुसलमानों को वापस जाकर अपने गांवों में बसने की सलाह देंगे?''

गांधीजी ने उत्तर दिया, ''यदि आपके भीतर साहस हो और ईश्वर में आवश्यक श्रद्धा हो, तो मैं आपसे कहूंगा कि आप वापस चले जाइये। मैं यह स्वीकार करता हूं कि अगर मेरे साथ ऐसी ही बातें होतीं, तो शायद मैं स्वयं वापस न जा पाता। मृतकों का विचार मुझे सताता। परंतु मेरी यह आकांक्षा जरूर है कि ईश्वर पर भरोसा करके मैं उन लोगों के बीच भी रह सकूं, जो मेरे घोर शत्रु बन गये हैं।''...

बर्बरता के कृत्यों के लिए जो लोग जिम्मेदार थे, उनके बारे में गांधीजी की यह राय थी कि उन्हें कठोर दंड मिलना चाहिए। बिहार सरकार ने सजा न देने की कसम नहीं खायी थी। ''जो सरकार अपराध का दंड देने में विश्वास करती है और फिर भी जाने हुए अपराधियों को दंड नहीं देती, वह सरकार कहलाने के योग्य ही नहीं है।

''बहुसंख्यक कौम ने पागल बनकर अल्पसंख्यक समुदाय की जो ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक हानि की है, उसकी क्षतिपूर्ति कैसे हो सकेगी?''

''ऐसी हानि की पूर्ति नहीं की जा सकती। बर्बरता के ऐसे कृत्य उस समय तक होते ही रहेंगे जब तक हम सहिष्णु बनकर यह बात समझ नहीं लें कि सभी धर्म ईश्वर के पास पहुंचाते हैं। जब तक यह परिवर्तन नहीं हो जाता तब तक ऐसी बर्बरता को और उससे होने वाली अपूरणीय हानि को रोकने असंभव है।''

''उन अधिकारियों के साथ क्या व्यवहार किया जाये, जिन्होंने दंगाइयों का खुला साथ दिया अथवा दूसरी तरह से पक्षपात का दोष किया था?''

''जिन अधिकारियों के विरुद्ध ऐसे आरोप सिद्ध किये जा सकते हों, उनके लिए सरकार में कोई स्थान नहीं हो सकता।''

अंतिम प्रश्न था : ''जैसी दुखद घटनाएं हाल में हुई हैं, उनकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए आप क्या कदम उठाना चाहते हैं?''

गांधीजी ने उत्तर दिया, ''मैं मंत्रियों से ऐसे कानून बनाने के लिए कहूंगा, जिनसे किसी स्थान-विशेष के मुसलमानों की सुरक्षा की जिम्मेदारी उस स्थान के हिन्दुओं पर डाली जाये। यह बात उस जगह के लिए है, जहां मुसलमानों की संख्या थोड़ी हो। परंतु जरूरत इस बात की है कि दोनों के दिल फिर से मिलें। यहां के मुसलमानों से मैं वही बात कहूंगा, जो मैंने नोआखाली के हिन्दुओं से कही थी : ईश्वर के डर के सिवा दूसरा सारा डर आपको छोड़ देना चाहिए।

मसौढ़ी में गांधीजी ज्यादा गहरे पानी में उतरे। उस क्षेत्र में दंगों के दिनों में एक अत्यंत भयंकर और करुण घटना हुई थी। गांव के गांव साफ कर दिये गये थे। लगभग प्रत्येक घर धराशायी कर दिया गया था। फिर भी वहां और बिहार में अन्यत्र भी हिन्दू और मुसलमान किसी समय मित्र थे। अधिकांश संस्थाएं, जैसे स्थानीय सहकारी बैंक, हाईस्कूल मंदिर तथा मस्जिद तक हिन्दू-मुसलमानों के सम्मिलित प्रयत्नों से स्थापित हुए और बने थे। गांधीजी ने मसौढ़ी में अपनी पहली प्रार्थना-सभा में भाषण दिया। उसमें 30 से 40 हजार पुरुष और स्त्रियां उपस्थित थीं। कुरान की आयतें संपूर्ण शांति से सुनी गयीं। क्या ये वही लोग हो सकते थे, जिन्होंने पागलपन के ये सारे काम किये थे?

गांधीजी ने अपने प्रार्थना-प्रवचन में कहा, मुझे दी गयी एक रिपोर्ट में यह कहा गया है कि मसौढ़ी में हमला मुसलमानों की तरफ से शुरू किया गया था। उत्पात वास्तव में कैसे आरंभ हुआ, इससे मेरा कोई मतलब नहीं। मुझे तो यह जानने से मतलब है कि जो हिन्दू इतने भारी बहुमत में हैं, वे निरपराध लोगों की हत्या करने की नीचता कैसे कर सके? मुसलमानों ने यह शिकायत भी की है कि सरकार उनके कष्टों पर ध्यान नहीं देती। परंतु मैं यहां न्याय करने नहीं आया हूं। मेरा काम अपराधियों पर मुकदमा चलाने वाले सरकारी वकील का या न्यायाधीश का नहीं है। मेरा तो एक सुधारक और मानवतावादी का नम्र कार्य है। मैं अपराधियों से उनकी मूर्खता के लिए पश्चात्ताप कराने आया हूं। सरकार पहले ही घोषणा कर चुकी है कि वह इन भयंकर दंगों के कारणों की जांच के लिए और भविष्य में ऐसी बातें न होने के उपाय ढूंढ़ने के लिए एक निष्पक्ष कमीशन नियुक्त करेगी। कमीशन सरकार को यह भी सलाह देगा कि पीड़ितों को क्या मुआवजा दिया जाय। जिन्हें शिकायत करनी हो, वे कमीशन के सामने अपनी शिकायतें और सबूत रखें।

प्रार्थना-प्रवचन के बाद गांधीजी मुस्लिम कष्ट-निवारण कोष के लिए रुपया इकट्ठा करने को ठहर गये। इस पर सभा में हड़बड़ी मच गयी, क्योंकि हर आदमी अपना धेला-पैसा महात्माजी के हाथ में पहले रखने के लिए आगे बढ़ने लगा। जब वे चंदा लेने के लिए हाथ बढ़ाकर आगे झुके, तो उन्होंने लोगों के चेहरों पर भावना का कंपन पढ़ लिया। यह इसका असंदिग्ध प्रमाण था कि अंत में उनके हृदयों में पश्चात्ताप की भावना पैदा हुई थी।

दूसरे दिन गांधीजी मसौढ़ी खास के बरबाद हुए घरों को देखने गये। जहां कहीं वे जाते और जिस रास्ते से भी गुजरते, वहां एक बड़ी भीड़ हमेशा उन्हें घेर लेती थी। उससे जो धूल उड़ती थी, उसमें होकर निकलना टेढ़ी खीर थी।...गोरैयाखारी में उस दिन शाम को उनका हृदय इतना भरा हुआ था कि वे

एक शब्द भी नहीं बोल सके। इसके बजाय उन्होंने प्रार्थना से पहले के समय का उपयोग सभा से महापाप के प्रायश्चित के रूप में पीड़ित मुसलमानों के लिए चंदा इकट्ठा करने में किया।

जब प्रायश्चित उपयुक्त कार्यों की मांग करता हो तब शोक मनाना एक विलास हो जाता है। अपने प्रार्थना-प्रवचन में गांधीजी ने श्रोताओं से कहा, आप लोग और कुछ न कर सकें, तो सच्चे प्रायश्चित के चिन्ह-स्वरूप हिन्दी के सिवा उर्दू भाषा और उर्दू लिपि सीख लीजिए। इससे मुसलमानों के साथ आपका संपर्क बढ़ेगा और वह सहानुभूति का ठोस और समुचित प्रमाण भी होगा। आपको अपने पड़ोस के बरबाद हुए गांवों को फिर से बसाने के लिए भरसक कोशिश करनी चाहिए। आपको मुसलमानों से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे पिछली बातों को भूल जायें और उनकी रक्षा तथा सुरक्षा का पूरा आश्वासन देकर उनसे अपने घरों में लौट आने के लिए अनुनय-विनय करना चाहिए; स्वयंसेवकों को ईश्वर के सच्चे सेवक बन जाना चाहिए और जो लोग अपराधी हैं उन्हें मन में कोई दुराव न रखकर अपने अपराध स्वीकार कर लेना चाहिए तथा उनके लिए उचित प्रायश्चित करना चाहिए।

दो दिन बीर गांव में ठहर कर 20 मार्च को गांधीजी फिर से मसौढ़ी लौटे। बीर से वे आसपास के कई गांव देखने गये। अपने प्रार्थना-प्रवचन में उन्होंने कहा, मैंने ऐसी बरबादी देखी है कि रो पड़ने के डर से उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। कोई भी वहां जाकर स्वयं उस बरबादी को देख सकता है। यह आपके लिए कलंक की बात है कि रक्तपात के महीनों बाद भी अभी तक मलबा हटाया नहीं गया है और परित्यक्त मुस्लिम घरों से माल-सामान रोज चुराया जा रहा है। आपने जो कुछ नष्ट किया है उसे फिर से बना देना आपका धर्म है। आपने जब अपराध किया है तो प्रायश्चित भी आपको ही करना होगा। मुसलमानों की क्षतिपूर्ति करने में प्रत्येक हिन्दू को भाग लेना चाहिए। जो लोग तैयार हों वे अपना नाम लिखा दें, ताकि इस काम के लिए अलग-अलग स्थानों में स्वयंसेवक-दल संगठित किये जा सकें। जो मकान बरबाद कर दिये गये हैं, उनकी जगह आपको ऐसे सुंदर मकान बनाने चाहिए कि देखने वाले को शंका भी न हो सके कि यहां कभी कुछ हुआ था! अगर आप अपना कर्तव्य पालन करेंगे, तो मुसलमान पिछली बातें भूलकर अपने घरों को लौट आयेंगे और इसकी खुशबू सारे भारत में फैल जायेगी।

मसौढ़ी के पीड़ित क्षेत्र में किये गये 6 दिन के दौरे के संस्मरणों का सार 22 मार्च को पटना की प्रार्थना-सभा में सुनाते हुए गांधीजी बोले : जिन भयंकर घटनाओं के अवशेष मैंने देखे, वे तो ऐसे हैं कि मनुष्य मानव-जाति से लगभग निराश हो जाता है। परंतु मैंने नवयुग के उदय के असंदिग्ध चित्र भी देखे हैं। जो कुछ हुआ उस पर ग्रामवासियों को केवल सच्चा पछतावा ही नहीं है, बल्कि मैं जैसा बताऊं वैसा प्रायश्चित करने को भी वे तैयार हैं। उन्होंने मुसलमानों के कष्ट-निवारण के लिए यथाशक्ति उदारता के साथ चंदा दिया है। रास्ते में उन्होंने जगह-जगह मेरी मोटर को रोक कर थैलियां भेंट की हैं। उन्होंने मुझे पत्र लिखकर मुसलमानों को फिर से बसाने में सहायता देने की तैयारी और इच्छा व्यक्त की है। कई स्थानों पर खुद मुसलमानों ने आकर मुझसे कहा कि वहां दुर्घटनाएं न होने का कारण वहां के हिन्दुओं की बहादुरी थी। दंगों के सिलसिले में जिन लोगों की खोज की जा रही थी ऐसे बहुत से लोगों ने आकर अधिकारियों के सामने आत्म-समर्पण कर दिया है। मुझे आशा है कि और अधिक लोग आगे आकर अपना अपराध स्वीकार करेंगे। अपराध स्वीकार करने से न केवल उनके साहस के लिए आदर पैदा होगा, बल्कि सारे प्रांत की प्रतिष्ठा भी अंत में बढ़ेगी।

दूसरे दिन गांधीजी मुस्लिम लीग की कार्यसमिति के एक सदस्य से मिले, जिसने कहा कि उनके बिहार आने से मुसलमानों में फिर विश्वास पैदा हो गया है।

परंतु सारे भारत की राजनीति में बहुत बुरी सड़ांध फैल गयी थी। एक जगह रोग के लक्षण शांत होते थे कि तुरंत दूसरी जगह रोग अधिक जोरों से फूट पड़ता था। सरदार पटेल ने गांधीजी को लिखा कि सैनिक कार्रवाई के जरिए पंजाब में एक तरह की शांति स्थापित हो गयी है। गांधीजी को श्मशान की शांति में कोई शांति दिखायी नहीं देती थी। उनकी पैनी दृष्टि ऊपरी सतह के नीचे गहरे उतर कर और वर्तमान को भेदकर देख सकती थी। 1857 का सिपाही-विद्रोह अधिक सशक्त हथियारों द्वारा दबा दिया गया था। ऊपर-ऊपर से शांति हो गयी थी। परंतु थोपे हुए राज्य के विरुद्ध द्वेष भीतर ही भीतर गहरा होता गया था और अंग्रेजों ने उस समय जो बीज बोये थे, उसके फल वे अब तक काट रहे थे। यदि पंजाब को जदा अच्छे हथियारों के बल पर दबाया गया हो, तो हिन्दू-मुसलमानों के बीच अधिक लड़ाई और अधिक कटुता के बीज हमेशा के लिए बो दिये गये समझना चाहिए।

गांधीजी के पास जो सूचनाएं पहुंची थीं, उनसे यह मालूम होता था कि पंजाब के लोग चुपके-चुपके खुली और अधिक भयंकर लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं। हथियार इकट्ठे किये जा रहे थे। गांधीजी ने भविष्यवाणी के रूप में चेतावनी दी : यदि यही हाल रहा तो मुझे सूरज की तरह साफ दिखायी देता है कि अमुक स्थिति पर पहुंचने के बाद परिस्थिति को नियंत्रण में रखना फौज के लिए भी असंभव हो जायेगा। सच्ची शांति तभी स्थापित होगी जब दोनों नहीं तो कम से कम एक पक्ष अहिंसा की सच्ची बहादुरी को अपना लेगा। परिस्थिति का मेरा अध्ययन यह बताता है कि बिहार ने इसे समझ लिया है कि स्त्रियों और बच्चों को मारने में कोई बहादुरी नहीं है। वह निरी कायरता है। यदि बिहार शांत शक्ति की सच्ची वीरता का परिचय दे सके और इस प्रकार भारत और संसार को मार्ग दिखा सके, तो वह बहुत बड़ी बात होगी। ❑

सामयिकी

कट्टरता का विरोध जरूरी

❑ पवन के वर्मा

पाकिस्तान के संघीय शरीयत कोर्ट के जज रह चुके एक हनफी मुस्लिम विद्वान ने हाल में एक फतवा जारी किया कि मुस्लिम औरतों को अपने अथवा अपने परिवार की फोटो सोशल मीडिया पर पोस्ट नहीं करनी चाहिए। हमारे यहां भी, देश के सर्वोच्च मदरसे दारुल उलूम देवबंद ने भी एक फतवा दिया, जो और भी अजीब है। इसने मुस्लिम महिलाओं को अपनी भौंहें निकालने या काट-छांटकर उनके आकार सही करने पर पाबंदी लगा दी। इसी संस्थान ने इसके पहले एक अन्य निर्देश में कहा कि मुस्लिम महिलाएं सरकारी अथवा निजी क्षेत्र में न तो कोई जॉब कर सकती हैं, न ही वे जज बन सकती हैं।

ऐसे फतवों में जो द्वेष व्याप्त होता है, उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। राजद से अपना गठबंधन तोड़ने के बाद इसी वर्ष 30 जुलाई को, जिस दिन नीतीश कुमार ने भाजपा के समर्थन से बिहार विधानसभा में विश्वास मत जीता था, उनके मंत्रिमंडल के एकमात्र मुस्लिम मंत्री खुर्शीद उर्फ फिरोज अहमद ने सदन के बाहर 'जय श्री राम' का नारा लगाया। तुरंत ही मदरसा इमारते शरिया के मौलवी सोहैल कासमी ने एक फतवा जारी कर कहा कि उनके 'गलत' कार्य के लिए मंत्री महोदय का निकाह हर हाल में रद्द कर दिया जाना चाहिए। फिरोज अहमद ने पहले तो यह घोषणा की कि मैं ऐसी धमकियों से डरने वाला नहीं हूं, पर अंततः उन्हें दबाव के सामने झुकना पड़ा और उन्होंने माफी मांग ली।

हमारे देश में ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड जैसे संस्थान भी हैं। साल 1973 में इस बोर्ड की स्थापना मुस्लिम व्यक्तिगत कानून के संरक्षण तथा व्याख्या के लिए की गयी थी और यह स्वयं को भारत में मुस्लिम मत की अभिव्यक्ति का अग्रणी संस्थान बताता है, मगर, इसने अपने विचारों द्वारा शायद ही कभी खुद को गौरवान्वित किया है। मिसाल के तौर पर, इस बोर्ड ने निःशुल्क तथा अनिवार्य बालशिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 पर आपत्ति जताते हुए कहा था कि इस अधिनियम से शिक्षा की मदरसा प्रणाली का अतिक्रमण होगा। इस बोर्ड ने बाल विवाह का भी समर्थन किया है।

यह बोर्ड तीन तलाक के मुद्दे पर मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों पर अत्यंत दकियानूसी दिखाता रहा है। इसने यह कहा कि हालांकि यह परिपाटी दोषमुक्त नहीं है, फिर भी इसे वैध माना जाना चाहिए, सौभाग्य से इस वर्ष अगस्त में सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में हस्तक्षेप कर इसे अवैध करार दिया। इससे भी बदतर, इस बोर्ड ने निकाह हलाला की परिपाटी को उचित ठहराया, जिसके अनुसार तलाकशुदा मुस्लिम महिला को अपने पूर्व पति से फिर शादी रचाने के पूर्व एक गैर-व्यक्ति के साथ संबंध कायम करना ही होगा।

सच्चाई यह है कि मुसलमानों के इन स्वयंभू अभिभावकों में परिवर्तन के प्रति शुतुरमुर्ग-सी विमुखता तथा कट्टरता के विपुल प्रमाण हैं। छोटी-छोटी बातों पर ढेरों किस्म के हास्यास्पद फतवे जारी करते इन अभिभावकों को अन्य के अलावा स्वयं उदारवादी मुस्लिम समुदाय द्वारा चुनौती दिये जाने की जरूरत है। मगर दुर्भाग्य से, अभी हमें इसके बहुत अधिक सबूत नहीं मिलते, राजनेताओं को भी चाहिए कि वे मुस्लिम व्यक्तिगत कानून की ऐसी मध्ययुगीन व्याख्या को केवल वोट बैंक की सियासत के लिए बढ़ावा देने से बाज आयें, जैसा 1985 के शाह बानो मामले में किया जा चुका है।

एक अन्य अहम मुद्दा भी विचारणीय है। जैसा मेरे अच्छे मित्र, टिप्पणीकार तथा पत्रकार शाहिद सिद्दीकी कहते हैं, मुस्लिम कट्टरता को बढ़ावा देकर हिन्दू कट्टरता की काट नहीं की जा सकती। ये दोनों ही गलत हैं और दोनों की निन्दा तथा विरोध किये जाने की जरूरत है। ये दोनों एक दूसरे को पोषण प्रदान करते हैं। इनका नजरिया विभिन्न आस्थाओं के उन लोगों के बीच विमर्श एवं साथ आने की संभावना को पूरी तरह विकृत कर देता है, जो मिल कर हमारी जीवंत गंगा-जमुनी तहजीब को रूपाकार देते हैं, जबकि अधिकतर हिन्दू और मुस्लिम इसे साझी कर अत्यन्त खुश होंगे।

अब वक्त आ गया है, जब यह पूछा जाना चाहिए कि क्या मुसलमानों के ये अति दकियानूसी ठेकेदार इस समुदाय की आकांक्षाओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हैं? साल 2003 में आउटलुक पत्रिका ने एक सर्वेक्षण कराया था, जिसमें उत्तरदाताओं की एक बड़ी तादाद (40 फीसदी) ने इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' में दिया था कि क्या आप बाबरी मस्जिद के लिए लड़ने वालों को मुसलमानों का सच्चा प्रवक्ता मानते हैं?

संभवतः कई मुसलमानों के पास आज एक बंद मानसिकता से पीड़ित होने की वजह मौजूद है। हमें उन शक्तियों का विरोध करने की जरूरत है, जिन्होंने ऐसी मानसिकता सृजित की है, लेकिन इसकी बराबरी में ही मुसलमानों को भी यह साहस दिखाना चाहिए कि वे उदार विचारों को अंगीकार कर उनकी जकड़न को चुनौती दें, जो ऐसे आदिम तरीकों के जरिये ये दावे करते हैं कि वे उनकी ओर से बोलते हैं। ❑

18 अप्रैल : भूदान दिवस पर विशेष

क्या सरकार शांतिपूर्ण आंदोलन को आंदोलन नहीं मानती

❑ संतोष भारतीय

22 और 23 फरवरी को देश के अधिकतर हिस्सों में किसानों ने शांतिपूर्ण आंदोलन किया। इन शांतिपूर्ण आंदोलन कर रहे किसानों पर बहुत सारी जगहों पर पुलिस ने लाठीचार्ज किया। उन्हें गिरफ्तार किया और हर प्रकार से उनका रास्ता रोकने की कोशिश की। ये किसान दिल्ली के रामलीला मैदान में सरकार को अपनी तकलीफ बताने आ रहे थे। ज्यादातर के पास ट्रैक्टर और ट्रॉलियां थीं। इन्हीं ट्रॉलियों में उनके खाने और पानी पीने के साधन थे। पुलिस ने इन्हें भी बहुत सारी जगह बर्बाद कर दिया।

दरअसल ये किसान किसी भी राजनैतिक दल से जुड़े हुए नहीं हैं। ये सिर्फ किसान हैं, शायद इसीलिए किसी राजनीतिक दल ने न तो उनकी मांगों पर ध्यान दिया और न ही समर्थन किया। ये किसान सिर्फ प्रधानमंत्री को यह याद दिलाने आना चाहते थे कि उन्हें दिया गया वचन पूरा किया जाये। एक ही वचन था कि केन्द्र में भाजपा सरकार बनने के बाद किसानों की फसल में आने वाली लागत में 50 प्रतिशत मिलाकर उन्हें फसल की कीमत निश्चित की जायेगी। अगर बाजार में उन्हें यह कीमत नहीं मिलती, तो सरकार उनकी फसल खरीद लेगी। लगभग 4 साल के बाद भी सरकार को यह वादा याद नहीं आ रहा। किसानों का कहना है कि जैसे दुष्यंत शकुंतला को भूल गये थे और जब उन्हें शकुंतला को दी हुई अंगूठी दिखायी गयी, तब उन्हें शकुंतला की याद आयी। उसी तरह किसानों को लग रहा है कि जब वे बार-बार प्रधानमंत्री मोदी को उनका वचन याद दिलाने दिल्ली आयेंगे, तो शायद उन्हें अपना वचन याद आ जाये। लेकिन केन्द्र सरकार के इशारे पर राज्य सरकार किसी भी कीमत पर किसानों को दिल्ली नहीं आने देना चाहती। जिन राज्यों में किसानों को दिल्ली आने से रोकने के लिए लाठीचार्ज, जेल, रास्ता रोको आदि कदम उठाये गये, वे सभी राज्य भाजपा शासित राज्य हैं।

भाजपा कभी भी किसान समर्थक पार्टी नहीं रही। इसे हमेशा व्यापारियों की पार्टी माना गया, लेकिन अब तो व्यापारी भी भारतीय जनता पार्टी के पूर्ण समर्थक नहीं हैं। सामान्य व्यापारियों को भी लगता है कि यह सरकार सामान्य व्यापारियों की नहीं, बल्कि कुछ बड़े उद्योगपतियों के लिए काम करने वाली सरकार है। शायद इसीलिए भाजपा ने किसानों की समस्याओं को प्राथमिकता की अंतिम सूची में रखा है, जिसका नंबर कभी नहीं आने वाला है।

हम आपको घाघ की भत्तृहरि की याद दिलाते हैं। ये ग्रामीण समस्याओं को समझने वाले ऐसे महान वैज्ञानिक थे, जिन्होंने सामान्य भाषा में आने वाले मौसम, आने वाली विपत्ति और भविष्य में किसानों के लिए पैदा होने वाली समस्याओं को आसान दोहों में लिख दिया था। अब भी गांव के लोग आने वाली आंधी और तूफान का ज्ञान आसमान में बादलों को देखकर और बदलते रंग को देखकर अंदाजा लगा लेते हैं कि क्या होने वाला है?

लेकिन केन्द्र सरकार में आने वालू तूफान को समझने वाले लोग नहीं हैं। शायद इसीलिए वे आकाश पर लिखी चेतावनी नहीं समझ रहे। बिना किसी राजनीतिक सहायता के, बिना किसी राजनीतिक दल के समर्थन के एकजुट होना, आंदोलन करना, दिल्ली की तरफ कूच करना एक बड़ा संकेत है कि किसान अब संघर्ष के लिए अपने आप खड़ा हो रहा है। जहां-जहां किसानों को रोकने की कोशिश हुई, वहीं वे धरने पर बैठ गये। वहीं रोटी बनाने लगे और आसपास के गांव से उनके लिए रोटियां बनकर आने लगीं। अगर सरकार इस संकेत को नहीं समझेगी, तो बहुत बड़ी भूल करेगी।

सरकार या सरकारें यह बताना चाहती हैं कि वे शांतिपूर्ण आंदोलन को आंदोलन नहीं मानती हैं। वे शायद दूसरे तरीके को आंदोलन मानते हैं। जैसे गुर्जर समाज ने राजस्थान में दिल्ली-मुम्बई रेल मार्ग को हफ्तों तक रोक दिया था या फिर जाट समाज ने अपनी मांगें मनवाने के लिए अराजकता फैला दी थी। जैसे ओडीशा में नक्सलवादियों ने जिले के जिलाधिकारी को अपहृत कर अपनी मांगें मनवा ली थीं। सरकार किसानों को ऐसे ही कदमों के लिए विवश कर रही है। इसलिए मेरा सरकार से अनुरोध है कि वह किसानों की समस्याओं को सुने और उन्हें तत्काल अपने वचनानुसार लागत में 50 फीसदी जोड़कर कीमत दे।

इसी के साथ सरकार सारे देश के हर ब्लॉक या प्रखंड में लोगों को ताप नियंत्रित भंडार गृह बनाने की अनुमति दे, ताकि किसान अपनी फसल वहां रख सकें। इस भंडारण गृह को जनता बनाये, लेकिन उसके

मानक सरकार तय करे और उसका किराया भंडारण गृह बनाने वाले को दे। साथ ही सरकार हर ब्लॉक में वहां की मुख्य उपज को प्रोसेस करने वाली औद्योगिक इकाई बनाने की अनुमति स्थानीय जनता को दे, ताकि वह ब्लॉक या प्रखंड में ही अपनी फसल के लिए बाजार तलाश सकें, ऐसी स्थिति में बड़ा व्यापार करने वाले लोग ब्लॉक तक पहुंचेंगे।

सरकार सेना, पुलिस, सुरक्षाबलों और अपनी सामाजिक योजनाओं के लिए ठेकेदारों से सामान खरीदती है। उसकी जगह सरकार सीधे औद्योगिक इकाइयों से अगर खरीद करती है, तो करोड़ों लोगों को रोजगार मिल जायेंगे और लाखों उद्योग खड़े हो जायेंगे। इससे देश का औद्योगिक नक्शा भी बदल जायेगा। इसके लिए बाजारवादी या न्यूलिबल इकोनॉमी वाले रास्ते से हटना पड़ेगा।

अगर सरकार अब भी किसानों के दृष्टिकोण से संपूर्ण अर्थव्यवस्था का विश्लेषण नहीं करती, तो उसे भविष्य में बड़े संकटों का सामना करना पड़ सकता है। दरअसल यही आकाश पर लिखा है।

जितना हो सके उतना किसानों के इस गैर राजनीतिक आंदोलन का समर्थन करना चाहिए, पर हमारे तथाकथित नेशनल न्यूज चैनल्स को किसानों का यह दर्द, किसानों का यह आंदोलन, किसानों का यह गुस्सा दिखायी नहीं देता है। उन्हें भी भविष्य के आकाश पर लिखी चेतावनी या आने वाले किसान तूफान का अंदेशा नहीं है, पर यह उनकी समस्या है। किसान तो अपने घर से दिल्ली की ओर निकलने के लिए तैयार हो चुका है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि अब किसानों के घर के नौजवान बच्चे अब इस आंदोलन की अगुवाई करने के लिए आगे आ चुके हैं। 22 और 23 फरवरी के किसान आंदोलन ने तो यही दिखाया है। देखना यही है कि कब सरकार आने वाले तूफान के संकेतों को समझ पाती है। ❑

18 अप्रैल : भूदान-दिवस पर विशेष

अहिंसक जन-आंदोलन भूदान

❑ **पराग चोलकर**

विनोबा दो शब्दों का उपयोग करते थे–सर्वसम्मति तथा सर्वानुमति। किसी मुद्दे पर सर्वसम्मति न भी हो तो बहुसंख्यकों का रुझान देखकर उसके प्रति जो अनुकूल नहीं हैं वे भी, अगर तत्त्वों का सवाल न हो तो, अनुमति दे सकते हैं। विशेषकर अगर यह विश्वास हो कि सहमति की प्रक्रिया ही एकमात्र अहिंसक निर्णय प्रक्रिया है।

सच्चा अहिंसक जन आंदोलन व्यक्ति तथा समाज की उत्क्रांति की दिशा में चलने वाली निरंतर प्रक्रिया होनी चाहिए। विनोबा ने इसे समर्पित रूप से आरोहण कहा था। भूदान, ग्रामदान आंदोलन ने ऐसा आरोहण बनने की उम्मीद की, इसी में उसकी एकमेव अद्वितीयता है।

'जन-आंदोलन' एक संयुक्त शब्द है, जिसके दो भाग हैं—एक 'जन' तथा दूसरा 'आंदोलन'। 'जन' का अर्थ है लोक यानी लोग, जनता। कैसे लोग? बिखरे हुए लोग आंदोलन किस प्रकार करेंगे? आंदोलन के लिए लोगों का इकट्ठा होना जरूरी है। लोग एक समूह बनाकर इकट्ठा हो सकते हैं, किसी मुद्दे को लेकर किसी संगठन द्वारा इकट्ठा किये जा सकते हैं अथवा आपसी संबंधों के ताने-बाने से बने सामुदायिक जीवन द्वारा इकट्ठा हो सकते हैं। अंग्रेजी में दो शब्द हैं—मॉब और मासेस। समूह में मनुष्य की बुद्धि क्षमता कम हो जाती है, विवेक शक्ति दुर्बल हो जाती है। उन्हें भेड़ों की तरह जिस दिशा में चाहें उस दिशा में मोड़ा जा सकता है। समूह तोड़फोड़ कर सकता है, आंदोलन नहीं।

जन का अर्थ होता है सभी लोग, गिने-चुने मुट्ठीभर लोग नहीं। हिंसा केवल मुट्ठी भर लोगों की शक्ति हो सकती है; सभी लोगों की नहीं, अतः हिंसक जन आंदोलन का विरोधाभास है। जहां हिंसा होगी वहां जन नहीं होंगे। समूह की हिंसा का उद्वेग अथवा मुट्ठीभर लोगों की संगठित हिंसा, दोनों जन आंदोलन कहलाने के पात्र नहीं हैं। विशिष्ट मुद्दे को लेकर संगठित आंदोलन में किसी विशिष्ट वर्ग का समावेश हो सकताव है। उसे भी जन आंदोलन कैसे कहें? आरंभ में इतना पर्याप्त होगा। यह प्रस्तावना इसलिए जरूरी है कि हमें जन आंदोलन का अर्थ स्पष्ट हो जाये।

विनोबा भावे ने भूदान आंदोलन शुरू किया। वे अकेले चलने लगे और लोग उनके पीछे आते गये कारवां बनता गया। विनोबा ने आंदोलन महज इसलिए नहीं शुरू किया कि चलो कुछ शुरू किया जाये।

सच्चे जन आंदोलन का प्रमुख लक्षण यह है कि वह परिस्थितियों की मांग के कारण शुरू होता है। भूमि का पुनर्वितरण उस समय (1951) परिस्थिति की मांग थी, उससे जन आंदोलन जन्मा।

भूमिधारकों, भूस्वामियों से भूमि मांगकर भूमिहीनों को सौंपना भूदान का मुख्य स्वरूप था। विनोबा की आरंभ से केवल

इच्छा ही नहीं, प्रयास भी थे कि भूदान आंदोलन जन आंदोलन बने। इसीलिए उन्होंने नेतृत्व को त्याग कर गणसेवा यानी जनसेवा का पक्ष लिया। इसमें कार्यकर्ता तो जुटे, लेकिन अपेक्षित जनसेवा विकसित नहीं हो पायी। भूदान आंदोलन विनोबा के नेतृत्व में ही हुआ। आंदोलन के विषय में सभी निर्णय विनोबा ने किये या उनकी सहमति से किये गये। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि ये निर्णय कार्यकर्ताओं पर उनकी इच्छा के विपरीत थोपे गये। आंदोलन की निर्णय-प्रक्रिया में सर्व सहमति एक आवश्यक शर्त थी। विनोबा भूदान आंदोलन को जन आंदोलन बनाने के लिए इतने उत्सुक थे कि उन्होंने इसके लिए निधि मुक्ति तथा तंत्र मुक्ति जैसे क्रांतिकारी कदम उठाये। ये बातें उनके मन में आरंभ से ही थीं, लेकिन उनके विषय में निर्णय तभी हुआ जब सभी की सहमति बनी। भूदान आंदोलन को जन आंदोलन बनाने के लिए दाताओं का सक्रिय सहभाग बढ़ाने के प्रयास किये गये। कहीं-कहीं दाता संघ भी बनाये गये। लेकिन ये प्रयास विशेष सफल नहीं हुए। भूमिहीनों के संगठन के बारे में बातें हुईं। लेकिन वर्ग-संघर्ष को टालकर वर्ग आधारित संगठन कैसे निर्मित करें, यह पेंच हल न हो सका। सारांश यह कि कार्यकर्ताओं के अलावा अन्य लोगों का सक्रिय सहभाग आवश्यक स्तर पर नहीं पहुंच पाया।

भूदान का स्वाभाविक विकास ग्रामदान के रूप में हुआ। ग्रामदान का अर्थ ग्रामशक्ति का संगठन होता है। एक-दूसरे के साथ जीने वाले, एक-दूसरे में सहभागी लोगों के समूह को गांव कहते हैं। ये लोग किसी विशिष्ट मुद्दे के लिए एकत्रित नहीं होते, वे एकत्रित होते ही हैं और उसी एकत्रित जीवन का एक हिस्सा होता है संयुक्त सामूहिक कृति। वे आंदोलनात्मक कृति भी कर सकते हैं। ऐसे लोगों का समुदाय जन संज्ञा के लिए पात्र है, क्योंकि उसमें गांव के सभी लोगों का अंतर्भाव है, इसलिए उनके आंदोलन को जन आंदोलन कहा जा सकता है।

ऐसे आंदोलन अहिंसक कब होंगे? तभी जब सहमति द्वारा निर्णय की प्रक्रिया इसके लिए आवश्यक शर्त होगी। सभी का समान सहभाग—निर्णयों और उनके कार्यान्वयन में भी—सहमति के आधार के बिना असंभव है। यह तो सत्य है ही, इसके अलावा ऐसी प्रक्रिया प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान देती है और उस स्वतंत्रता को उपयोग में लाने की क्षमता भी विकसित कर सकती है, अतः केवल इसी प्रक्रिया को अहिंसक कहा जा सकता है।

सहमति का नाम लेते ही अकस्मात एक प्रतिक्रिया होती है कि यह कैसे संभव हो सकता है? इस प्रतिक्रिया में कल्पनाशीलता का अभाव तो है ही जानकारी का भी अभाव है। क्योंकि इतिहास में कई बार इस प्रक्रिया को उपयोग में लाने के कम या अधिक मात्रा में सफल प्रयास किये गये हैं। हाल ही में हुए 'ऑक्यूपाई वॉल स्ट्रीट' आंदोलन में इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया गया था। विनोबा दो शब्दों का उपयोग करते थे—सर्वसम्मति तथा सर्वानुमति। किसी मुद्दे पर सर्वसम्मति न भी हो तो बहुसंख्यकों का रुझान देखकर उसके प्रति जो अनुकूल नहीं हैं वे भी, अगर तत्त्वों का सवाल न हो तो, अनुमति दे सकते हैं। विशेषकर अगर यह विश्वास हो कि सहमति की प्रक्रिया ही एकमात्र अहिंसक निर्णय प्रक्रिया है। इस विषय में रचनात्मक प्रयोग हो सकते हैं। मेंढ़ा (गढ़चिरोली जिला) गांव के ग्राम-समाज ने कई वर्ष पहले सर्वसहमति द्वारा यह निर्णय किया था कि सभी निर्णय सर्वसहमति द्वारा लिये जायेंगे। हर प्रकार की परिस्थितियों से गुजरते हुए उन्हें इस निर्णय से कठिनाई नहीं आयी, उल्टे स्वयं शासन की दिशा में उनकी यात्रा सरल हो गयी।

भूदान, ग्रामदान आंदोलन की विशिष्टता यह है कि इसमें उन्होंने सदा सहमति का आग्रह किया। इसीलिए अपने संगठन स्तर पर और ग्राम स्तर पर ग्रामशक्ति के संगठन के कारण भी वह अहिंसक विशेषण का पात्र है।

भूदान, ग्रामदान जैसे आंदोलन अहिंसक आंदोलन थे तथा जन आंदोलन बनने का उन्होंने सजगतापूर्वक प्रयास किया था। वे विशेष सफल नहीं हो सके और इसी कारण आंदोलन कुंठित भी हुए। लेकिन स्वतंत्र भारत में ऐसा कौन-सा आंदोलन हुआ, जिसने अहिंसा का तथा जन आंदोलन बनने का प्रयास किया? विशिष्ट मुद्दों के इर्द-गिर्द कुछ छिटपुट आंदोलन हुए, भले ही वे शांतिपूर्ण रहे हों। अहिंसक बनने का प्रयास शायद ही किसी ने किया हो। और अगर जन आंदोलन बनने का प्रयास किसी ने किया भी हो तो समुदाय आधारित न होने के कारण जन आंदोलन नाम का पात्र अन्य कोई आंदोलन नहीं दिखायी देता और अगर सफलता के विषय में सोचा जाये, तो भूमिहीनों को 25 लाख एकड़ से भी अधिक भूमि प्रदान करने का पुरुषार्थ अन्य किस आंदोलन में दिखायी देता है? कई आंदोलन असफल रहे और जिन्हें थोड़ी-बहुत सफलता मिली वे बड़ी मात्रा में प्रतीकात्मक ही रहे।

सच्चा अहिंसक जन आंदोलन व्यक्ति तथा समाज की उत्क्रांति की दिशा में चलने वाली निरंतर प्रक्रिया होनी चाहिए। विनोबा ने इसे समर्पित रूप से आरोहण कहा था। भूदान, ग्रामदान आंदोलन ने ऐसा आरोहण बनने की उम्मीद की, इसी में उसकी एकमेव अद्वितीयता है।

अपना ऐतिहासिक योगदान देकर यह आंदोलन समाप्त हुआ। लेकिन भविष्य में कोई भी आंदोलन जन आंदोलन बनना चाहे, तो इस आंदोलन के इतिहास से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। संगठन का नेतृत्व के विषय में भूमिका, निर्णय प्रक्रिया, रणनीति, कार्यशैली आदि अनेक विषयों के संदर्भ में सीखा जा सकता है और सीखना होगा। ❑

गांधी की विरासत कहां तक होगी मददगार

❑ कृमार कृष्णन

बिहार के उत्तर-पश्चिम में स्थित चम्पारण व इलाका है, जहां सत्याग्रह की नींव पड़ी। नील की खेती के नाम पर अंग्रेजी शासन द्वारा किसानों के शोषण के खिलाफ यहां गांधी के नेतृत्व में 1917 में सत्याग्रह आंदोलन चला था। आंदोलन के शताब्दी वर्ष में चम्पारण एक बार फिर वैसे ही आंदोलन की बाट जोह रहा है। गांधी विचार धारा को नजरअंदाज करते हुए आज जिस दिशा में विकास को ले जा रहे हैं, क्या सचमुच विकास है। चम्पारण आंदोलन के इतिहास के बहाने इन्हीं बुनियादी मुद्दों पर प्रकाश डालता प्रस्तुत आलेख। –सं.

चम्पारण सत्याग्रह के शताब्दी वर्ष में देश उस महत्त्वपूर्ण दौर को याद कर रहा है, उस लड़ाई को याद कर रहा है, जिससे किसानों के सवाल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का अभिन्न अंग बने। वह संघर्ष जिसने दक्षिण अफ्रीका से लौटे मोहनदास करमचंद गांधी को करोड़ों भारतीयों के दिल में बसा दिया। वह परिघटना जिससे स्वतंत्रता आंदोलन का फलक व्यापक हुआ। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप नील की मांग बढ़ने के कारण ब्रिटिश सरकार किसानों से जबरन नील की खेती करवाते थे, चम्पारण के किसान इससे परेशान थे। 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के बाद नील की आपूर्ति के लिए चम्पारण के किसानों पर दबाव और बढ़ा। हजारों भूमिहीन मजदूर एवं गरीब किसान खाद्यान्न के बजाय नील और अन्य नकदी फसलों की खेती करने के लिए बाध्य हो गये थे। इसे खिलाफ वहां के किसान संघर्ष पर उतरे। आगे चलकर किसानों को गांधीजी के सहयोग की जरूरत पड़ी।

किसानों के अनुरोध पर गांधीजी वहां पर नील की खेती करने वाले किसानों के हालत का जायजा लेने पहुंचे। चम्पारण में अंग्रेजों ने नील बनाने के अनेक कारखाने खोल रखे थे। ऐसे अंग्रेजों को 'निलहे' कहा जाता था। इन अंग्रेजों ने चम्पारण की अधिकांश जमीनों को हथिया कर उस पर अपनी कोठियां बनवा ली थी। अंग्रेजों का कहना था कि एक बीघे जमीन पे तीन कट्ठे नील की खेती जरूर करें। इस प्रकार पैदा हुई नील को ये निलहे कौड़ियों के दाम खरीदते थे। इस प्रथा को तीनकठिया प्रथा कहा जाता था। इस प्रथा के कारण चम्पारण के किसानों का भयंकर शोषण हो रहा था। फलतः किसानों में अंग्रेजों के खिलाफ व्यापक असंतोष फैल चुका था। शोषण से व्यथित होकर चम्पारण के एक निवासी राजकुमार शुक्ल, जो स्वयं एक किसान थे, इस अत्याचार का वर्णन करने के लिए गांधीजी के पास गये। राजकुमार शुक्ल के सतत प्रयत्नों से ही राष्ट्रीय कांग्रेस के 1916 के अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर चम्पारण के किसानों के प्रति सहानुभूति प्रकट की गयी। राजकुमार शुक्ल के साथ गांधीजी 10 अप्रैल, 1917 को पटना पहुंचे और वहां से उसी रात्रि मुजफ्फरपुर के लिए रवाना हो गये। पटना प्रवास के दौरान गांधीजी वहां के प्रसिद्ध वकील बाबू राजेन्द्रप्रसाद से मिलना चाहते थे, परंतु राजेन्द्र बाबू उस समय वहां मौजूद नहीं थे। गांधीजी अपने मित्र मौलाना मजरुल्लहक, जो प्रतिष्ठित बैरिस्टर थे, उनसे मिलकर नील की खेती से संबंधित समस्या की जानकारी ली और इससे निजात हेतु विचार-विमर्श किया। 15 अप्रैल को गांधीजी मोतीहारी पहुंचे, वहां से 16 अप्रैल की सुबह जब गांधीजी चम्पारण के लिए प्रस्थान कर रहे थे, तभी मोतीहारी के एस डी ओ के सामने उपस्थित होने का सरकारी आदेश उन्हें प्राप्त हुआ। उस आदेश में ये भी लिखा हुआ था कि वे इस क्षेत्र को छोड़क तुरंत वापस चले जायें। गांधीजी ने इस आज्ञा का उल्लंघन कर अपनी यात्रा को जारी रखा। आदेश की अवहेलना के कारण उन पर मुकदमा चलाया गया।

चम्पारण पहुंचकर गांधीजी ने वहां के जिलाधिकारी को लिखकर सूचित किया कि, "वे तब तब चम्पारण नहीं छोड़ेंगे, जब तक नील की खेती से जुड़ी समस्याओं की जांच वो पूरी नहीं कर लेते।" जब गांधीजी सबडिविजनल मजिस्ट्रेट की अदालत में उपस्थित हुए तो वहां हजारों की संख्या में लोग पहले से ही गांधीजी के दर्शन को उपस्थित थे। मजिस्ट्रेट मुकदमे की कार्यवाही स्थगित करना चाहता था, किन्तु गांधीजी ने उसे ऐसा करने से रोक दिया और कहा कि सरकारी उल्लंघन का अपराध वे स्वीकार करते हैं। गांधीजी ने वहां एक संक्षिप्त बयान दिया, जिसमें उन्होंने चम्पारण में आने के अपने उद्देश्य को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि "वे अपनी अंतर्रात्मा की आवाज पर चम्पारण के किसानों की सहायता हेतु आये हैं और उन्हें मजबूर होकर सरकारी आदेश का उल्लंघन करना पड़ा। इसके लिए उन्हें जो भी दंड दिया जायेगा, उसे वे भुगतने के लिए तैयार हैं।" गांधीजी का बयान बहुत महत्त्वपूर्ण था। तत्पश्चात् बिहार के लैफ्टिनेंट गवर्नर ने मजिस्ट्रेट को मुकदमा वापस लेने

को कहा। इस प्रकार गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन का ज्वलंत उदाहरण पेश किया। गांधीजी की बातों का ऐसा असर हुआ कि वहां की सरकार की तरफ से उन्हें पूरे सहयोग का आश्वासन प्राप्त हुआ।

गांधीजी और उनके सहयोगियों तथा वहां के किसानों की सक्रियता के कारण तत्कालीन बिहार सरकार ने उच्च स्तरीय समिति का गठन किया, जिसके मनोनीत सदस्य गांधीजी भी थे। इस कमेटी की रिपोर्ट को सभी पक्षों द्वारा स्वीकार किया गया और तीन कट्ठा प्रथा समाप्त कर दी गयी। इसके अलावा किसानों के हित में अनेक सुविधाएं दी गयीं। इस प्रकार निलहों के विरुद्ध ये आंदोलन सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। इससे चम्पारण के किसानों में आत्मविश्वास जगा और अन्याय के प्रति लड़ने के लिए उनमें एक नयी शक्ति का संचार हुआ। चम्पारण सत्याग्रह भारत का प्रथम अहिंसात्मक सफल आंदोलन था। गांधीजी द्वारा भारत में पहले सत्याग्रह आंदोलन का शंखनाद चम्पारण से शुरू हुआ। यहां किसानों के बच्चों को शिक्षित करने के लिए ग्रामीण विद्यालय खोले गये। लोगों को साफ-सफाई से रहने का तरीका सिखाया गया। सारी गतिविधियां गांधीजी के आचरण से मेल खाती थीं। स्वयंसेवकों ने मैला ढोने, धुलाई, झाड़ू-बुहारी तक का काम किया। इसके साथ ही गांधीजी का राजनीतिक कद और बढ़ा।

इसके बाद अहमदाबाद के कपड़ा मिल मालिकों और गुजरात के खेड़ा जिले में लगान के खिलाफ ब्रिटिश सरकार से लड़ाई जीतकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के सबसे बड़े नेता के रूप में उभरे। सन् 1917 में बहुत अधिक वर्षा होने के कारण फसल बरबाद हो गयी थी, जिसकी वजह से भयंकर अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गयी। गुजरात सभा की अध्यक्ष की हैसियत से गांधीजी ने भी संबंधित अधिकारियों को पत्र लिखकर एवं तार भेजकर प्रार्थना कि कि मालगुजारी की वसूली को स्थगित कर दिया जाये। किन्तु अंग्रेज नौकरशाही कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे। तब गांधीजी ने खेड़ा जिले के किसानों को सत्याग्रह की सलाह दी। सत्याग्रह के प्रारम्भ में सभी सत्याग्रहियों से गांधीजी ने शपथ लेने को कहा था। खेड़ा सत्याग्रह में किसानों के आंदोलन का ये तरीका बिलकुल नया था। गांधीजी गांव-गांव घूमकर किसानों को हर हाल में शांति बनाये रखने की अपील कर रहे थे। उन्होंने किसानों में सरकारी अफसरों से न डरने का साहस जगाया।

गांधीजी के व्यक्तित्व का ही असर था कि खेड़ा के किसानों ने पूरा आंदोलन शांतिपूर्ण तथा निर्भीकता से आगे बढ़ाया। सरकारी दमन चक्र चलता रहा कुछ सत्याग्रही गिरफ्तार भी किये गये। मवेशियों तथा जमीनों को भी सरकारी दमन का शिकार होना पड़ा। इन सब कठिनाइयों के बावजूद भी किसान दृढ़ता से अपने सत्याग्रह आंदोलन पर डटे रहे। परिणामस्वरूप मजबूर होकर सरकार को किसानों से समझौता करना पड़ा। इस आंदोलन से गुजरात के किसानों को अपनी शक्ति का एहसास हुआ और देश में एकता की शक्ति का नारा बुलंद हुआ। इसके साथ ही किसानों और मजदूरों के मुद्दे आजादी की लड़ाई की बड़ी लड़ाई का हिस्सा बने। आगे चलकर अछूतोद्धार और नारी उद्धार जैसे समाज सुधार के सवाल भी इस संग्राम के महत्त्वपूर्ण अंग बने। इस लिहाज से चम्पारण सत्याग्रह का महत्त्व निर्विवाद है। इस आंदोलन से स्वतंत्रता आंदोलन का जनतांत्रिकरण हुआ। यह महत्त्वपूर्ण है कि आज जबकि कृषि क्षेत्र गहरे संकट में है और उदारीकरण के फलस्वरूप मजदूर अधिकारों पर हमले बढ़े हैं, तब क्या चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद के सत्याग्रहों से कोई प्रेरणा ली जा सकती है? क्या आज के हालातों से निपटने के लिए गांधी की विरासत कोई मददगार हो सकती है? विकास पैमाने पर कहां हैं किसान। ❑

वरिष्ठ गांधीवादी श्री एच.एस. दोरेस्वामी को 'सर्वोदय सम्मान'

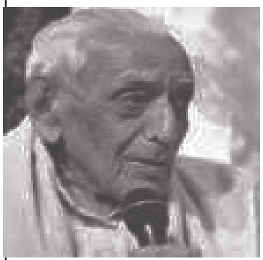

कर्नाटक सर्वोदय मंडल के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा वरिष्ठ गांधीवादी श्री एचएस दोरेस्वामी को उनके **100वें जन्मदिन** पर सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) की ओर से गत 10 अप्रैल को सर्वोदय आंदोलन में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए **'सर्वोदय सम्मान'** से सम्मानित किया गया।

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही के हाथों तथा महामंत्री श्री शेख हुसेन, सेवाग्राम आश्रम के अध्यक्ष श्री टी.आर.एन. प्रभु, कर्नाटक सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष श्री एल नरसिम्हैया, सचिव श्री एच.एस. सुरेश एवं कर्नाटक गांधी भवन के कार्यकर्ताओं की उपस्थिति में उन्हें बंगलुरू में यह सम्मान प्रदान किया गया।

श्री दोरेस्वामी का जन्म 10 अप्रैल 1918 को मैसूर राज्य के हरोहल्ली गांव में हुआ। भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल होने के कारण उन्हें दिसम्बर 1942 में गिरफ्तार कर लिया गया और 1944 तक जेल में रखा गया। श्री दोरेस्वामी 1951 में आचार्य विनोबा भावे के भूदान आंदोलन में शामिल हुए एवं कर्नाटक में भूदान प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

श्रीमती इंदिरा गांधी, प्रधानमंत्री द्वारा 1975 में जब आपातकाल लगाया गया तो उन्हें डी.आई.आर. (भारत रक्षा अधिनियम) के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया। 1993 में गुजरात के कंडला में बहुराष्ट्रीय कंपनी कारगिल नमक बनाने की परियोजना लगा रही थी। इसके खिलाफ सर्व सेवा संघ ने साबरमती से कंडला तक मार्च आरंभ किया। आप इस मार्च में शामिल होने के लिए विशेष तौर पर कर्नाटक से गुजरात आये थे।

सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) वर्ष 2018-19 'सर्वोदय सम्मान' श्री एच.एस. दोरेस्वामी को प्रदान करते हुए गौरव का अनुभव करता है तथा उनके सुदीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करता है।

-मारोती गावंडे, कार्यालय मंत्री

24 अप्रैल : दिनकर पुण्य-तिथि
विनम्र स्मरणांजलि

राष्ट्रकवि दिनकर की साहित्य-साधना के विविध रूप

❑ श्रीरंजन सूरिदेव

कविवर दिनकर की साहित्य-साधना के रूप-वैविध्य की महिमा, सर्वव्यापिनी है। विशेषतः उनकी काव्य-प्रतिभा सीमांतपारगामी स्तर पर मुखरित है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से युगक्रांति का संदेश दिया है। उनकी काव्य-कृतियां शताब्दी से भी अधिक है। यह वक्तव्य सही नहीं होगा कि उनका काव्य छायावाद का प्रतिलोम है। परंतु इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी काव्य-जगत पर छाये छायावादी कुहासे को छांटने वाली शक्तियों में दिनकर की प्रवाहमयी ओजस्विनी कविता का ऐतिहासिक महत्त्व है। वह छायावादोत्तर काल के उन्हीं के शब्दों में 'छायावाद की ठीक पीठ पर आये' कवियों में पात्तेय हैं। सच पूछिये तो, लाक्षणिक और अस्वाभाविक भाषा-शैली में निबद्ध छायावादी कविताओं से उनका कविहृदय ऊब चुका था। उन्हें द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा की स्पष्टता की अपेक्षा थी, साथ ही वास्तविक संस्पर्श और सहजता की भी।

आरंभ में, दिनकर ने कतिपय छायावादी कविताएं लिखीं, परंतु जैसे-जैसे वह अपने स्वर से स्वयं परिचित होते गये, अपनी काव्यानुभूति पर ही अपनी कविता को आधृत करने का आत्मविश्वास उनमें बढ़ता गया। दिनकर वस्तुतः द्विवेदीयुगीन और छायावादी काव्य-पद्धतियों के बीच सेतु कवि बन गये थे। उनके ही शब्दों, 'पंत के सपने हमारे हाथ में आकर इतने वायवीय नहीं रहे, जितने कि वे छायावाद-काल में थे। किन्तु द्विवेदीयुगीन अभिव्यक्ति की प्रांजलता और स्वच्छन्दता की नयी विरासत हमें आपसे आप प्राप्त हो गयी।' इस मंतव्य के प्रसंग में दिनकरजी की 'रसवंती', 'द्वंद्वगीत' अदि काव्य कृतियां संदर्भित करने योग्य हैं।

दिनकर बच्चन की तरह एकांत व्यक्तिवाद नहीं, वरन् वह मूलतः सामाजिक चेतना के मुखर प्रवक्ता थे। दिनकर के प्रथम तीन काव्यसंग्रह 'रेणुका' (1935 ई.), 'हुंकार' (1938 ई.) और 'रसवंती' (1939 ई.) उनके आरंभिक आत्ममंथन-युग की काव्य-रचनाएं हैं। रेणुका में अतीत के गौरव के प्रति कवि का सहज आग्रह और आकर्षण परिलक्षित होता है। साथ ही, वर्तमान परिवेश की वस्तुस्थिति से त्रस्त मन की व्यथा-वेदना का भी परिचय प्राप्त होता है। 'हुंकार' में तो कवि अतीत के गौरव-गान की अपेक्षा वर्तमान दैन्य के प्रति आक्रोश-प्रदर्शन की ओर अधिक उन्मुख हुआ है। 'रसवंती' में कवि के सौन्दर्यानुराग की भावना काव्यमयी हो गयी है। 'सामधेनी' (1947 ई.) में दिनकर की सामाजिक चेतना स्वदेश और परिवेश की परिधि से आगे बढ़कर विश्व-वेदना का अनुभव करती-कराती जान पड़ती है। इसमें कवि के स्वर का वेग और ओज नये शिखर पर पहुंच गया है। उसके बाद 'नीलकुसुम' (1953 ई.) में हमें कवि के एक नये रूप के दर्शन होते हैं, यद्यपि इतने नये नहीं, जितने नयेपन का बोध स्वयं कवि को था। यहां वह काव्यात्मक प्रयोगशीलता के प्रति अधिक आस्थावान हैं।

उक्त मुक्तक काव्यों के अतिरिक्त दिनकर ने अनेक प्रबंध-काव्यों की भी रचना की है, जिनमें 'कुरुक्षेत्र' (1946 ई.), 'रश्मिरथी' (1952 ई.) और 'उर्वशी' (1961 ई.) प्रमुख हैं। 'कुरुक्षेत्र' में महाभारत के शांतिपर्व के मूल कथानक का प्रतिमान लेकर उन्होंने युद्ध और शांति के विराट और गंभीर एवं महत्त्वपूर्ण विष्ज्ञय पर अपने विचार भीष्म और युधिष्ठिर के संलाप के रूप में आवर्जक काव्यभाषा में उपन्यस्त किया है। 'रश्मिरथी' में भी महाभारत की ही कर्ण-कुंती की कथा को प्रभावकारी ढंग से काव्यायित किया गया है। 'कुरुक्षेत्र' के बाद उनके नवीनतम काव्य-रूपक 'उर्वशी' में फिर हमें विचार-तत्त्व की प्रमुखता प्राप्त होती है। साहसपूर्वक गांधीवादी अहिंसा की आलोचना करने वाले 'कुरुक्षेत्र' को हिन्दी-जगत में यथेष्ट लोकादर प्राप्त हुआ। 'उर्वशी', जिसे स्वयं कवि ने 'कामाध्यात्म' की उपाधि प्रदान की है, एक नये शिखर का स्पर्श करती है।

दिनकर आधुनिक कवियों की प्रथम पंक्ति के कवि हैं। यह निश्चयपूर्वक उद्घोषित किया जा सकता है। रस, भाव और वैचारिकी की उनके काव्यों में कमी नहीं है, भले ही दार्शनिक गंभीरता कम हो। उनकी काव्य-शैली में प्रसाद गुण का प्राचुर्य है, प्रवाह, ओज और अनुभूति की तीव्रता है, साथ ही सच्ची संवेदना भी। उनके विचारों में मौलिकता भी है। उनके काव्यवर्णित चित्र सर्वथा स्पष्ट होने से वे ततोऽधिक जनग्राह्य या सम्प्रेषणशील हैं और साधारणीकरण के तत्त्व भी कम नहीं हैं। उनकी कविताओं का यह विशिष्ट गुण है। उनकी अभिव्यक्ति की तीव्रता में चिन्तन-मनन की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखायी पड़ती है। उनका जीवन-दर्शन उनका अपना जीवन-दर्शन है, जो उनकी काव्यानुभूति से अनुप्राणित तथा उनके अपने विवेक से अनुप्राणित, परिणामतः निरंतर परिवर्तनशील है।

दिनकर प्रगतिवादी, जनवादी-मानववादी आदि-आदि रहे हैं। 'रसवंती' की भूमिका में वह यह कहने में संकोच नहीं करते कि 'प्रगति' शब्द में जो नया अर्थ ठूंसा गया है, उसके फलस्वरूप हल और फावड़े

कविता का सर्वोच्य विषय सिद्ध किये जा रहे हैं और वातावरण ऐसा बनता जा रहा है कि जीवन की गहराइयों में उतरने वाले कवि सिर उठा नहीं सकें।' गांधीवाद और अहिंसा के हामी होते हुए भी 'कुरुक्षेत्र' में वह यह कहते नहीं हिचकते कि 'कौन केवल आत्मबल का एक वश चलता नहीं/योगियों की शक्ति से संसार में, हारता लेकिन नहीं समुदाय है।'

दिनकर की प्रगतिशीलता एक ऐसी सामाजिक चेतना का परिणाम है, जो मूलतः भारतीय है और वह राष्ट्रीय भावना से परिचालित है। उन्होंने राजनीतिक मान्यताओं को राजनीतिक मान्यताएं होने के कारण अपने काव्य का विषय नहीं बनाया और न कभी राजनीतिक लक्ष्य-सिद्धि को काव्य का उद्देश्य माना, फिर भी उन्होंने निःसंकोच राजनीतिक विषयों को उठाया है और उनका प्रतिपादन किया है; क्योंकि वह काव्यानुभूति की व्यापकता स्वीकार करते हैं, राजनीतिक मान्यताओं और नीतियों को सहज ही उनकी काव्यानुभूतियों में अनुस्यूत हो गया है।

दिनकर की गद्य-कृतियों में उनकी नैबन्धिक प्रतिभा की विलक्षणता और विचक्षणता के दर्शन होते हैं। उनका महाग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' (1956), जिसमें उन्होंने प्रधानतया शोध और अनुशीलन के आधार पर मानव-सभ्यता के इतिहास का चार अध्यायों या पड़ावों में बांटकर अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त दिनकर के समीक्षात्मक तथा विविध निबंधों के संग्रह हैं। उनकी प्रसिद्ध आलोचनात्मक नैबन्धिक कृतियां हैं—'मिट्टी की ओर' (1946 ई.), 'काव्य की भूमिका' (1958 ई.), 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण' (1958 ई.), 'शुद्ध कविता की खोज' (1966 ई.) एवं 'अर्द्धनारीश्वर'।

'अर्द्धनारीश्वर' के निबंधों में बौद्धिक चिन्तन तथा विश्लेषण के तत्त्व अंकित हैं। जो पाठक कविताओं में अभिरुचि लेते हैं, वे दिनकर के निबंधों, खासकर 'अर्द्धनारीश्वर' के निबंधों में अधिक रमेंगे और रीझेंगे भी। वह 'अर्द्धनारीश्वर' के 'आमुख' में लिखते हैं—'नहीं चाहने पर भी लेख में थोड़े-बहुत लिखता ही रहता हूं, यद्यपि कविताओं की तरह सभी लेखों पर मेरी ममता नहीं रहती। तब भी जो लेख मुझे या उन लोगों को पसंद आ जाते हैं, जिनके साथ मैं साहित्य पर विचार-विनिमय करता हूं, उन्हें मंजूषा में सजा देने की इच्छा जरूर जग पड़ती है। वर्तमान संग्रह भी मेरी इस प्रवृत्ति का फल है। इस संग्रह में ऐसे भी निबंध हैं, जो मनबहलाव में लिखे जाने के कारण कविता की चौहद्दी के पास पड़ते हैं और कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें बौद्धिक चिन्तन या विश्लेषण प्रधान है। इसीलिए इस संग्रह का नाम 'अर्द्धनारीश्वर' रखा है, यद्यपि इसमें अनुपाततः नरत्व अधिक और नारीत्व कम है। किन्तु, यही अनुपात मेरी कविता में भी रहा है, अतएव आशा करनी चाहिए कि जिन्हें मेरी कविताएं पसंद हैं, उन्हें ये निबंध भी कुछ आनंद दे सकेंगे।' प्रस्तुत 'आमुख' को पढ़कर, संकलित निबंधों के बारे में सहज ही यह धारणा बनती है कि नहीं चाहने पर भी जो कवि इतने इच्छे ललित निबंध लिख सका है, वह अद्भुत है। 'अर्द्धनारीश्वर' के निबंधों की भाषा गद्यात्मक होते हुए भी उनमें प्रच्छन्न पद्यात्मकता है, जिसमें युगबोधता मुखरित हुई है एवं प्रयोग प्रौढ़ कवि की अकुंठ लेखनी लोच और लचीलेपन के कारण अभिव्यक्ति की अपूर्व मोहकता आ गयी है। किसी विषय पर विचारों की विविधता और प्रामाणिकता के साथ उनका एकत्र गुम्फन ही निबंध है। 'अर्द्धनारीश्वर' के वैयक्तिक निबंध अपने समय के प्रतिनिधि निबंध हैं।

वैयक्तिक निबंध गद्य साहित्य का एक मनोहारी रचना-विधा है। 'अर्द्धनारीश्वर' के निबंध, अपने लालित्य के कारण रसोद्रेक और सरसता का युगपत् उत्पन्न करते हैं। दिनकर की नैबन्धिक दृष्टि नितांत बुद्धिमूलक न होकर हृदयमूलक अधिक हैं। निबंधकार ने अपनी प्रकृति के अनुकूल स्वोद्भावित विषय के विवेचन-क्रम में नाधिक गंभीरता के साथ ही विनोदशीलता से भी काम लिया है। दिनकर ने 'अर्द्धनारीश्वर' के निबंधों द्वारा आत्मान्वेषण का सफल प्रयास किया है। व्यक्तिगत निबंध के संदर्भ में दिनकर का मंतव्य ध्यातव्य है कि 'व्यक्तिगत निबंध श्रद्धाविद्ध ऋतु हृदय का भक्तिमय निश्छल उद्गार है। आवत्मान्वेषण ललित निबंध की सर्वातिशायी विशेषता है। 'खडग और वीणा', 'मंदिर और राजभवन', 'कर्म और वाणी', 'चालीस की उम्र', 'हड्डी की चिराग' आदि निबंधों में लेखक ने अपने अहं का ही निष्कपट उद्भावन किया है, वैयक्तिक या ललित निबंध का उल्लेख्य गुण है। पाठक ज्यों-ज्यों लेखक की आत्मस्वीकृतियों को सहज ही आत्मसात् करता जाता है, त्यों-त्यों लेखकीय व्यक्तित्व के अनेक आवृत्ति-अनावृत्त परतें उसके समक्ष अनायास उभरती जाती हैं। फलतः लेखक के व्यक्तित्व के माध्यम द्वारा पाठक का एक ही व्यक्ति से परिचय नहीं होता, अपितु संपूर्ण मानव-व्यक्तित्व से हो जाता है। इसलिए, यह कहना सही होगा कि व्यक्तिगत निबंध के रचयिता की रचना प्रक्रिया में संपूर्ण विश्व अंतर्निहित हो जाता है।

चालीस के दशक के शुरू होते-न-होते व्यक्तिगत निबंधों के प्रति जिन लेखकों की आग्रहशीलता तीव्रता से बनी रही, उन अच्छे निबंधकारों में दिनकर का नाम शिखरस्थ है। अभिव्यंजना-शैली के सिद्धहस्त शिल्पी दिनकर ने अपनी निबंध-रचनाओं द्वारा हिन्दी के व्यक्तिगत निबंध साहित्य को कभी बासी न पड़ने वाली अभिरामता पर्याप्त समृद्ध किया है।

निष्कर्ष यह कि राष्ट्रकवि दिनकर जहां एक कलामुखर वरेण्य कवि हैं, वहीं वह नैबंधिक प्रतिभा से प्रदीप्त श्रेण्य गद्यकार भी हैं। यही कारण है कि उनके पद्यगंधि निबंधों में आलोचक या भाष्यकार के गद्य की जटिलता की अपेक्षा गद्यकवि के सहज-सुलभ भाषा-लालित्य की आस्वाद्य मधुरता का पूर्ण परिपाक उपलब्ध होता है। ❑

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा'

लक्ष्मीदास का संकट

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।–संपा.

लक्ष्मीदास को मोहनदास का पत्र मिला तो वे देर तक स्तब्ध बैठे रहे। यह सवाल उनके दिमाग में घूमता रहा क्या यह मेरे भाई मोहनिया का पत्र है? वह ऐसा पत्र कैसे लिख सकता है? उनके लिए झटका नहीं, चोट थी। अंदर तक लहूलुहान हो गये थे। मोहनदास ने सम्पत्ति त्याग दी यह उनके लिए कल्पनातीत बात थी। जिस भाई के लिए अपनी और अपने परिवार की खुशियां बलिदान कीं, उसकी शिक्षा के लिए घर भर ने साथ दिया, कर्ज लिया, उसके बच्चों को हर सुख-सुविधा दी, बिना आगा-पीछा सोचे सब कुछ किया, वही अब अपनी जिम्मेदारी से भाग रहा है? यह अकृतज्ञता पूरे परिवार के प्रति कितना बड़ा अन्याय और अपमान है। परिवार ने जो पैसा दिया उसे लौटाने की बात नहीं है। मोहनदास अब सफल और समृद्ध है। अब उसकी स्थिति है कि परिवार को जिस सहायता की जरूरत हो, करे।

करसन और लक्ष्मीदास के मन में शंका थी। वे दोनों यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि मोहनदास साधु हो गया। गरीबी का जीवन जीने की उसकी शपथ नाटक और धनलोलुपता है। उसने अपने भारतीय परिवार को पैसा भेजना इसलिए बंद किया है कि वह दक्षिण अफ्रीका में बसे अपने परिवार के लिए धन इकट्ठा कर सके। संदेह की जड़ें नहीं होतीं। वह अमरबेल की तरह बढ़ता है। वे कस्तूरबा को दोषी ठहरा रहे थे। वह चाहती तो उसे ऐसा करने से रोक सकती थी। उसने ही यह सब उसके दिमाग में भरा है। उसके मां-बाप धनी थे, अब उसका भाई पैसे में खेल रहा है। कस्तूर बचपन से धन का महत्त्व समझती है। वहां जाकर उसकी भावनाएं हमारी तरफ से बदल गयीं। उसने ही गरीबी का व्रत लेने के बहाने हमारे पूरे

परिवार को मोहनदास से काटने का सांग रचा है।

लक्ष्मीदास ने मोहनदास को दीवान करमचंद की याद दिलाते हुए एक सख्त जवाब लिखा कि उन्होंने जीवन-भर पूरे परिवार की जिम्मेदारी उठायी, स्वभावतः वे भी यही चाहते होंगे कि उनके बेटे भी उनकी परम्परा को आगे बढ़ायें।

मोहनदास ने मोटा भाई को आरम्भिक औपचारिकताओं के बाद केवल दो पंक्तियों का पत्र लिखा—

'आदरणीय भाई साहब,

मैंने वही किया जो बापू ने किया था। बस अंतर इतना ही है कि मैंने अपने परिवार का दायरा बढ़ाकर पूरी मानवता को शामिल कर लिया...।'

उनके इस जवाब से लक्ष्मीदास चौंक गये। क्या मोहनिया का गरीबी में रहने का संकल्प सही है? यह उसका अपना निर्णय है? हमारा कस्तूर को दोष देना गलत था। इसका मतलब है मोहनिया के दिमाग में खलल आ गया है। सही दिमाग वाला आदमी अपने बच्चों और अपने सगे-संबंधियों के बारे में पहले सोचता है। इस तरह का फैसला नहीं लेता कि इतनी कम उम्र में अपनी सम्पत्ति त्यागकर साधु हो जाये। देश में ऐसे लोग हुए हैं जो पचास साल की उम्र में धन, सम्पत्ति और परिवार छोड़कर साधना करने जंगल में चले गये। लेकिन मोहनिया तो सैंतीस साल की अवस्था में संसार छोड़ रहा है, वह जीवन की सच्चाई से दूर चला गया। कस्तूर ने ऐसा कैसे होने दिया?

बच्चों का क्या होगा? वे चिन्तित होकर टहलने लगे।

लक्ष्मीदास ने मन ही मन सोचकर हरिलाल को बुलाया। उन दिनों वह वहीं था। वे कुछ देर तक उसे देखते रहे फिर बोले, 'मैं सोचता हूं, अपने रहते तुम्हारी शादी कर दूं।'

'बापू...?'

'तुम्हारे बापू को तुम्हारी चिन्ता होती तो संसार त्यागने की कसम न लेता।'

'मोटा बापू, मैं समझा नहीं।'

'वह सब कुछ दूसरों को बांटकर गरीब होने का व्रत ले रहा है। तुम्हारा ब्याह मुझे ही करना होगा, सारा भार अकेले कैसे संभालेंगे। मैं वोरा जी से बात कर लेता हूं।'

'बा और बापू शामिल होंगे? वे दोनों तो रिश्ते से नाराज थे।'

गुलाब से अपने रिश्ते की बात पर बा-बापू की नाराजगी हरि को अच्छी नीं लगी थी। वह मन ही मन सोच रहा था उसकी बीमारी के समय बा-बापू दक्षिण अफ्रीका में थे, मोटा बापू राजकोट छोड़कर पोरबंदर चले गये थे। फुआ अकेले कैसे देखभाल करती। तब गुलाब और उसके घरवालों ने ही उसकी सेवा-सुश्रूषा की थी।

लक्ष्मीदास ने गुलाब के पिता से बात करके हरि की शादी की तारीख तय कर दी। उन्होंने पूछा भी, 'हरि के बा-बापू...?'

'उनको इतने कम समय में इतनी दूर से बुलाना मुश्किल होगा।'

2 मई, 1906 विवाह के लिए तय हो गयी। लड़की के पिता, मोटा और बिचले बापू के सहयोग से धूमधाम और विधि-विधान से विवाह संपन्न हो गया।

जब ठीक एक महीने बाद मोहनदास डरबन के लिए निकल रहे थे तो लक्ष्मीदास का पत्र मिला। पत्र पढ़कर मोहनदास की त्योरियां चढ़ गयीं। वे बुदबुदाए, 'यह तो सरासर धोखा है।'

कस्तूर रसोई में थी। उनकी बड़बड़ाहट सुनकर आयी और पूछा, 'क्या हुआ, इतना परेशान क्यों हो?'

'बड़े भैया ने हरिलाल की शादी कर दी, यह बदला तो नहीं है?' कस्तूरबा स्तम्भित रह गयी। एकदम चुप। मोहनदास बोले, 'यह बदला नहीं तो क्या है...सफाई दी है कि यह हरिलाल के हित में किया है। उन्हें ही उसके हित का खयाल है और किसी को नहीं, उसकी उम्र ही क्या है?'

कस्तूरबा ने पति के गुस्से को महसूस किया। अंदर ही अंदर वह जान रही थी कि पति का गुस्सा बेटे पर न होकर अपने बड़े भाई पर था। उनकी बात से गुस्से से ज्यादा दुःख और असहायता प्रकट हो रही थी। हालांकि बड़े बेटे के विवाह से अधिक उत्साह और उल्लास का क्षण एक बा और बापू के लिए और क्या हो सकता है। कस्तूरबा का मन विक्षोभ से भर गया था। सबसे अधिक आश्चर्य व दुःख इस बात से था कि दूल्हे के माता-पिता को उनके पहले बेटे के विवाह की खबर तक नहीं दी गयी। हरिलाल की सबसे बड़ी खुशी और उसके जीवन में परिवर्तन के इस विशिष्ट अवसर पर, सम्मिलित होने के, इकलौते मौके को, उनसे छीन लिया गया था। हरिलाल के मन को यह बात सदा कचोटेगी, उसके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना पर बा-बापू अनुपस्थित थे। कहीं यह बात विष वृक्ष का रूप धारण न कर ले।

'यह कब हुआ?' कस्तूरबा ने पूछा।

'पिछले महीने, उसमें हमलोगों के सिवाय सब लोग सम्मिलित थे।' मोहनदास ने पत्र के साथ भेजी गयी आमंत्रित अतिथियों की सूची पढ़कर सुना दी।

'हरिलाल और गुलाब तो बच्चे थे, भैया ने स्वयं कहा था कि उनका विवाह कुछ साल बाद किया जायेगा, वोरा जी इस बात को जानते थे। उन्होंने मेरे विश्वास को तो तोड़ा ही मेरी भावनाओं को भी चोट पहुंचायी। जीवन में पदार्पण करने से पहले दोनों बच्चों को बहुत कुछ सीखना था।' मोहनदास की आवाज में अस्थिरता थी।

कस्तूरबा के मन ने उससे सवाल किया क्या बड़े भैया ने यह नहीं सोचा होगा कि इतनी जल्दी विवाह बच्चों के हित में नहीं है? गुलाब के घर वाले कैसे तैयार हो गये? उनकी तो बेटी है। वे लोग तो अपने देश में हैं, सब कुछ देखते जानते हैं। हम दोनों दक्षिण अफ्रीका में होने के कारण परिस्थिति और घटनाक्रम से अनजान थे। कस्तूरबा अपनी सहजानुभूति के आधार पर समझ रही थी कि जल्दी शादी का कारण यही रहा होगा कि हरि और गुलाब एक दूसरे को प्यार करने लगे थे, और बहुत करते थे। गुलाब के मां-बाप खतरे को समझ रहे थे। भारतीय विवाह-पूर्व शारीरिक संबंधों को पाप मानते हैं। उन्होंने सोचा होगा इससे पहले कि इस तरह का कोई संकट आये दोनों को विवाह सूत्र में बांध दिया जाये। मोहनदास इसे बड़े भाई की नाराजगी कारण मान रहे थे।

कस्तूरबा ने समझाने की कोशिश की, 'हो सकता है, हरिलाल जल्दी विवाह करना चाहता हो।' वह पति की नाराजगी को कम करना चाहती थी।

'गलत', मोहनदास बड़बड़ाए, 'उन्हें यह नहीं महसूस हुआ कि इतनी कम उम्र में विवाह करना अनुचित साबित होगा।'

'हम लोगों के घर वालों ने कब सोचा था?' कस्तूरबा ने उनकी तरफ देखकर धीमे से कहा। मोहनदास को ठीक नहीं लगा। कस्तूरबा कहते-कहते रुक गयी। वह हम दोनों का ही बेटा है। वह जानती थी कि हरि कितना उतावला, भावुक और इकमना है। वह मोहनदास के बारे में सोचने लगी कि वे भी उतावले, जिद्दी थे...शारीरिक संबंधों के बारे में उनकी इच्छा के विरुद्ध जाना कितना मुश्किल था। अपनी वासनाओं को नियंत्रित करने के लिए उन्हें कितनी जद्दोजहद करनी पड़ी। अगर उनके बेटे हरि और गुलाब की एक दूसरे के प्रति इतनी गहरी भावनाएं हैं तो क्या गलत है? उन दोनों का विवाह कर देना ही समझदारी थी। सब मां-बाप अपने बच्चों को जानते समझते हैं।

मन की सब बातें हर किसी से बांटना संभव नहीं होता, कभी-कभी पति से भी नहीं। मोहनदास ने लक्ष्मीदास को पत्र लिखा, 'मेरे लिए हरिलाल के विवाह का कोई महत्त्व नहीं...।' वह लक्ष्मीदास को उनके द्वारा लिखा गया अंतिम पत्र था। भले ही वह पत्र लक्ष्मीदास के उस निर्णय के विरोध में था पर हरिलाल और गुलाब के विवाह की प्रकारांतर से अस्वीकृति भी थी। बाद में चलकर पिता पुत्र के संबंधों के बीच शायद उस पत्र की भूमिका भी रही हो?

कस्तूर के दिमाग में भी यही सवाल था अगर हरि ने कभी बापू का पत्र पढ़ लिया तो बीज को वृक्ष बनते देर नहीं लगेगी।

जुलू विद्रोह और कस्तूरबा

सब लोग खाने की मेज पर बातचीत में मशगूल थे कि एकाएक बात जुलू विद्रोह की ओर मुड़ गयी। मोहनदास उसके राजनीतिक प्रभावों और सैनिक चालों के बारे में अपने सरोकारों का खुलासा करने लगे। कस्तूरबा ने उनकी बातों के सारे संदर्भ न समझने के बावजूद अपने मन की बात उनके सामने रख दी, 'मैं समझती हूं आपको जाकर उनकी मदद करनी चाहिए।' मोहनदास आश्चर्यचकित रह गये कि उसने अपनी बात इतनी सहजता से कह दी जैसे वह जान गयी हो वे क्या करने वाले हैं।

मोहनदास ने खाने की मेज पर बैठे सब लोगों पर नजर डाली और कहा, 'मैं सोच रहा हूं कि पिछली बार की तरह इस बार भी भारतीय घायल सहायता टोली यानी एम्बुलेंस बनायें।' कहकर कस्तूरबा की तरफ देखा। वह बोली, 'इसका मतलब हमें यहां का घर बंद करके फीनिक्स जाना होगा।'

मोहनदास जानते थे कि कस्तूरबा को रोज रोज की खानाबदोशी से कितनी नफरत है। उसमें उसका भी कसूर नहीं है। मेरे कारण वह एक जगह से उखड़कर बार-बार अलग-अलग जगह बसती रही है। उसकी आंखों में देखते हुए उनको लगा कि उपरोक्त सुझाव देते समय वह जान रही थी कि उसके कथन का मतलब उसके और उसके बच्चों के लिए क्या है।

मोहनदास ने अगले दिन ही गवर्नर को एम्बुलेंस की टुकड़ी बनाकर, युद्ध के जख्मी होने वाले सिपाहियों की सहायता करने का प्रस्ताव भेज दिया। कस्तूर ने भी धीरे-धीरे सामान बांधकर कूच की तैयारी शुरू कर दी। वह जान रही थी कि गवर्नर उनके प्रस्ताव को मंजूरी दे देंगे। अगर नहीं देंगे तो मोहनदास किसी न किसी तरह युद्ध से अपने को जोड़ लेंगे। वह यह भी जानती थी कि मोहनदास को बीमार और घायलों की सेवा करने की धुन है। वह चाहे भी तो उन्हें रोक नहीं सकती। उसे और बच्चों को जाना ही होगा। वह मोहनदास की पसंद और झक दोनों को समझती थी। इसीलिए उनकी मान्यताओं के साथ सहज हो गयी थी। बिना कहे सुने उनके गुण-अवगुण के साथ रहना सीख लिया था।

जैसा कि कस्तूरबा ने सोचा था, मोहनदास के प्रस्ताव पर गवर्नर की हां हो गयी थी। घर में अफरा-तफरी मच गयी। मोहनदास ने तत्काल मकान मालिक को एक महीने का नोटिस दे दिया। जोहान्सबर्ग का घर बिना किसी शोर-शराबे के बिखर गया। पोलक और मिली एक छोटे घर में चले गये। सबके मन भारी थे, सुस्ती और अवसाद था। मणिलाल, रामदास और देवदास काफी उत्साहित थे। दौड़-दौड़कर सामान बांधने में मदद कर रहे थे और बापू से फीनिक्स के रहन-सहन और वहां के बच्चों के बारे में सवाल पूछ रहे थे।

2 जून, 1906 को गांधी परिवार जोहान्सबर्ग से फीनिक्स के लिए नयी जिन्दगी आरम्भ करने के लिए रवाना हो गया। कस्तूरबा के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन होने जा रहा था जो उसने पहले कभी नहीं सोचा था। फीनिक्स तब मीलों तक गन्ने के खेतों के बीच सांपों का जंगल था। दो मील का सफर पैदल तय करना पड़ा था। भाग्य से छगनलाल, मगनलाल और सेटिलमेंट के कुछ लोग सामान ले जाने में मदद करने स्टेशन आ गये थे। सबसे अच्छी बात हुई थी कि उस दिन बारिश नहीं हुई थी। नहीं तो उन लोगों को घुटनों तक कीचड़ में और ऊपर तक भरकर बहने वालों झरनों से होकर गुजरना पड़ता।

22 जून, 1906 को मोहनदास और उनकी सहायता टुकड़ी सरकार से मिली वर्दी, भारी जूते और पट्टी पहनकर, डरबन से रेल में सवार होकर, युद्ध-क्षेत्र पहुंच गयी थी। मोहनदास को सार्जेंट मेजर का रैंक दिया गया था। उनके नीचे तीन सार्जेंट थे। टुकड़ी में कुछ गुजराती थे, कुछ दक्षिण भारत से आये कुली थे। वह वास्तव में युद्ध नहीं था बल्कि इकतरफा हत्याएं थीं। वहां उन्होंने जुलू घायलों के जख्म साफ किये, उनकी पट्टियां कीं। क्योंकि स्वास्थ्य विभाग के गोरे कर्मचारी उनके जख्मों को छूने को तैयार नहीं थे। गोरे बीमारों में मलेरिया आदि से पीड़ित ही थे। जुलू सिपाहियों के घाव सड़ गये थे। उन्हें लग रहा था जैसे उनकी शुश्रूषा करने वाले ऊपर से भेजे गये देवदूत हों। जब वे उनकी पट्टियां कर रहे थे तो दूसरी तरफ खड़े गोरे सिपाही हुल्लड़ मचा रहे थे, मजाक उड़ा रहे थे। गोलियां भी दाग रहे थे। मोहनदास समझ गये थे कि ये वे ही लोग हैं जिन्होंने अपने बेरहम अफसरों के आदेश पर इन निहत्थे जुलू सिपाहियों को जख्मी किया है। टुकड़ी के स्वयं सेवक, बिना इधर-उधर देखे, अपने सेवा कार्य में व्यस्त थे। जुलू सिपाहियों की आंखों में कृतज्ञता का भाव था।

जब गोरों के अत्याचार की खबरें बाहर फैलने लगीं तो उस वितंडावाद को रोकने के लिए घोषणा कर दी गयी कि जुलू विद्रोह दबा दिया गया। सेना के सिपाहियों को उनके बैरकों में भेज दिया गया था। एम्बुलेंस टुकड़ी को भी उनके घरों को लौटा दिया गया था।

...क्रमशः अगले अंक में

गणेश शंकर विद्यार्थी शहादत दिवस

आत्महत्या करने वाले किसान से पूछूं की उसकी जाति या धर्म क्या है?

गणेश शंकर विद्यार्थीजी के शहादत-दिवस 26 मार्च को मुंबई सर्वोदय मंडल व जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी ने संयुक्त रूप से मुंबई में मनाया। इस दिन मुंबई के प्रेस क्लब में सभा का आयोजन किया गया था। नवभारत टाइम्स के पत्रकार (निवृत्त) सरोज त्रिपाठी व खोजी पत्रकार निरंजन टकले मुख्य वक्ता थे। सभा की अध्यक्षता मुंबई सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष जयंत दिवाण तथा संचालन मंसूर पटेल ने की।

विद्यार्थीजी के कार्य व उनके विचारों पर सरोज त्रिपाठी ने विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि सांप्रदायिकता पर उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। विद्यार्थीजी का मानना था कि सांप्रदायिकता की समस्या साम्राज्यवाद ने पैदा की है, जिससे कि साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष आपसी संघर्ष में बदल जाये। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इतिहास को गलत ढंग से लिखवाया। इस इतिहास में कला, संस्कृति में दिखने वाली एकता नहीं थी। तमाम एकता के सूत्र आज के इतिहास में नहीं मिलते। विद्यार्थीजी ने अपने लेख में बताया कि लोगों को एक बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि उत्तर भारत में रामलीलाएं मस्जिदों के सामने हुआ करती थीं, इसका कोई जिक्र इतिहास की पुस्तकों में नहीं मिलता।

विद्यार्थीजी ने एक और सवाल उस समय उपस्थित किया था, यह मुल्क किसका है? वह बनता कैसे है? मुल्क लोगों से बनता है, जिसमें विभिन्न जाति, भाषा, धर्म के लोग रहते हैं। उस जमाने में कांग्रेस में कई विचारधारा के लोग हुआ करते थे। मालवीयजी, स्वामी श्रद्धानंद, लाजपतराय, भाई परमानंद...यह लोग हिन्दू राष्ट्र की बात करते थे। विद्यार्थीजी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा कि इन लोगों को मालूम होना चाहिए कि धर्म के नाम पर राष्ट्र का जमाना बीत गया है। हिन्दू राष्ट्र कभी नहीं बनेगा।

भगत सिंह और विद्यार्थीजी के आपसी संबंधों पर विस्तार से सरोज त्रिपाठी ने प्रकाश डाला। भगत सिंह के साथी जिस उद्देश्य के लिए लड़ रहे थे, उसी बात के लिए विद्यार्थीजी भी लड़ रहे थे। विद्यार्थीजी बहुत स्पष्ट शब्दों में बोलते थे कि हिंसा व अहिंसा की बात जो हमारे देश में की जा रही है वह प्रासंगिक नहीं है, हिंसा नीति है, न कि धर्म है। वह कहते, 'मेरे लिए क्रांतिकारियों का उतना ही महत्त्व है जितना कांग्रेस के आंदोलनों का।'

मजदूर व किसानों के प्रति विद्यार्थीजी का जो लगाव था, उसे विस्तार से त्रिपाठी ने रखा। कानपुर में ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस का जो सम्मेलन हुआ उसके स्वागताध्यक्ष विद्यार्थीजी थे। मजदूर, किसानों के मुद्दे पर वे लगातार लिखते रहते थे। विद्यार्थीजी ने यह सवाल उठाया था कि जो स्वराज्य आयेगा वह किसके लिए आयेगा? क्या मुट्ठीभर लोगों के लिए आयेगा या आम जनता के लिए? यह सवाल उस जमाने में भी बहुतों को पसंद नहीं था और आज तो यह सवाल भुला ही दिया गया है।

विद्यार्थीजी जब मुस्लिम महिलाओं को बचाकर ले जा रहे थे तब उनपर हमला हुआ। लोगों ने उनसे कहा कि आप भाग जाइये। उन्हें भागने का पूरा मौका था, लेकिन विद्यार्थीजी ने कहा, 'अपने लोगों से अपनी जान बचाने के लिए मैं भागूंगा नहीं। अपने लोगों के हाथों मरना पसंद करूंगा।' और विद्यार्थीजी उन लोगों के हाथों मारे गये। अगर आज विद्यार्थीजी होते तो आज भी वे जेल में होते। यही उनकी प्रासंगिकता व विरासत है। विद्यार्थीजी के शहादत दिवस पर उनको याद करना है तो उनके सिद्धांतों को याद करें, उनके अधूरे कामों को पूरा करें, यही सही श्रद्धांजलि होगी।

खोजी पत्रकार निरंजन टकले ने कहा कि वर्ष 2015 में महात्मा गांधी के भारत आगमन के सौ साल पूरे हुए। गोपाल कृष्ण गोखले के कहने पर उन्होंने देश का दौरा किया और जिस मार्ग पर वे घूमे उस मार्ग पर निरंजनजी ने रेल के जनरल कोच से सफर किया।

अपने इस सफर पर भाष्य करते हुए उन्होंने कहा कि आज का भारत आज के हालात के बारे में क्या सोचता है? आज का भारत गांधीजी के बारे में क्या सोचता है? यह समझने के लिए 14 हजार किलोमीटर की यात्रा उन्होंने की। उन्होंने एक प्रसंग का उल्लेख किया कि वे मुगलसराय से कलकत्ता रेल से सफर कर रहे थे। तब डिब्बे में बैठे-बैठे उन्होंने लोगों से चर्चा की—आज की तारीख में गांधी कितना प्रासंगिक है? कुछ लोगों का कहना था सत्य, अहिंसा अब कोई मानता नहीं। अब सब भूल चुके हैं गांधीजी को! एक लड़का बैठा था 25-26 साल का, मजदूरी करने वाला। उसने कहा नहीं-नहीं बाबूजी, गांधीजी अभी भी जिन्दा हैं। उसने कहा गांधीजी की हत्या की तारीफ करने वाले बहुत हैं, पहले छुप-छुप कर तारीफ करते थे अब खुलेआम हो रही है। इसके बावजूद इतने सालों में किसी की हिम्मत नहीं हुई अपने बच्चे का नाम नाथुराम रखने की। जब तक यह शरम जिन्दा है तब तक गांधी जीवित हैं। जिस दिन यह शरम खत्म हो जायेगी उस दिन गांधी मर जायेगा। गांधीजी की जरूरत व उनका अस्तित्व हम आंक सकते हैं। जो मूलभूत मूल्य हैं उन्हें हमें अपने आचरण में लाना चाहिए—सच बोलो, सच बोलने से डरो मत।

आदमी मरने के बाद, कुछ नहीं बोलता,
आदमी मरने के बाद, कुछ नहीं सोचता,
कुछ नहीं सोचने या कुछ नहीं बोलने पर
वैसे भी आदमी मर जाता है।

अंत में निरंजनजी ने कहा कि 'मैंने पहली बार विद्यार्थीजी के बारे में सुना, लेकिन भविष्य में वही मेरे आदर्श रहेंगे।'

माना कि यह विषवृक्ष तुमने नहीं लगाया,
लेकिन लोग जब से लगा रहे थे
तुम खामोश रहे।
माना कि यह विषवृक्ष तुमने नहीं सींचा,
जब लोग इसे सींच रहे थे, तुम चुपचाप रहे।
अब जब इस विषवृक्ष का फल
हलाहल उगल रहा है,
क्यों चिल्ला रहे हो तुम?
क्या अभी-भी तुम्हारे हाथों में कुल्हाड़ी नहीं है।

हमें उस कुल्हाड़ी की तलाश करनी होगी। यही सही श्रद्धांजलि विद्यार्थी जी के लिए होगी।

–जयंत दिवाण

लीमा टूटी की चार कविताएं

(एक)

वो स्त्रियां
जो आत्महत्या कर लेती हैं
या वो, जिनकी हत्या कर दी जाती है
या वो, जिनकी देह में तो जान है
पर जीवन में नहीं,
ऐसी सभी स्त्रियां
एक बार तो...जरूरी लड़ी होंगी,
एक अंतिम लड़ाई...
और पुरुष!
तुम्हारी बनायी
वर्जनाओं के खिलाफ...
मांगा तो होगा उसने,
अपने हिस्से की जमीन...
और आसमान
मांगे होंगे पंख...और अपनी उड़ान
पर तुम्हारे लिए ये जुर्म था,
और तुमने फैसला सुनाया
अपने हक में
पर ऐसी सभी स्त्रियां...
छोड़ जाती हैं...
कुछ अनकहा...अनदेखा
जो दिख रहा है...
हर उस स्त्री को
जो सचमुच जिंदा है
और उसने तय किया है...
वो जिंदा रहेगी...अपनी स्वाभाविक
मृत्यु तक, और तब तक...
छीनती रहेगी तुमसे
अपने हिस्से का जीना...

(दो)

जवान परेशान, किसान परेशान,
सारा कानून और विधान परेशान,
परेशान हैं शिक्षक, विद्यार्थी परेशान,
क्या कहें हर परीक्षार्थी परेशान,
बहुएं परेशान, बेटियां परेशान,
नेता परेशान
और पार्टियां भी परेशान,
बस बचे हुए हैं...
माल्या और नीरव महान,
उनके पीछे हुआ सारा बैंक परेशान,
क्या कहें हम?
आवाक हैं, और क्या?
बाकी सब... ठीक-ठाक है...

(तीन)

जिन्दगी की कोई रूपरेखा
तुमने तय नहीं की...
तुम्हारे सपने तुम्हारी ही तरह
चारदीवारी नहीं लांघते,
चौखट के बाहर की दुनिया
तुम्हारी नजर में...अच्छी नहीं है,
टी. वी. पर समाचार
तुम्हें अक्सर सुला देते हैं...
तुम्हारे लिए
पति की नाराजगी ही
सबसे बड़ा दुःख है...और
मैके जाने की इजाजत
सबसे बड़ा तयोहार...
सखियों में दिल उलीचना
तुम्हारा सुकून है
और घर में हंसी-ठहाकों की आवाजें
तुम्हारा संतोष!
मेरी प्यारी सखी!
इस असंतोषी दुनिया में
तुम्हारी सादगी
और तुम्हारा ये इत्मिनान देख
समझ नहीं पाती...कि,
तुमसे सवाल करूं
या...
तुम्हें सलाम करूं

(चार)

क्या जाने दर्द कम होगा
या बढ़ जायेगा
किसे फिक्र गरीब की,
वो कैसे रह पायेगा

चकरा जाता है वो,
चीजों के भाव सुनकर
घूमकर बाजार से
खाली ही लौट जायेगा

इस कदर महंगाई के
इस जमाने में
वो भला क्या निचोड़ेगा,
क्या नहायेगा

भूख से बिलखते होंगे,
घर पर उसके बच्चे
आज फिर भरपेट उन्हें,
पानी पिलायेगा

हर रात गुजार देता है वो
इसी उम्मीद में
खुशियां लेकर कोई एक दिन,
जरूर आयेगा

अनगिनत दुखों से रोज
वो लड़ने वाला
आज फिर भूख से
हार जायेगा... ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।